R.N.I. No. : RAJHIN16138 ISSN : 2278-6392

शिक्षा की बुनियाद

वर्ष : 1 अंक : 3 जनवरी–मार्च, 2013, उदयपुर

विद्या भवन सोसायटी

Azim Premji University

शिक्षा की बुनियाद

इस अंक में...

1 ज्ञान की जरूरत
भगवती लाल व्यास

3 दिल का रंग
ज्योतिभाई देसाई

5 बुनियादी शिक्षा का ताना–बाना
गुणसागर शर्मा 'सत्यार्थी'

8 बुनियादी शिक्षा का सर्वोदय दर्शन
दयाल चंद सोनी

14 जीवन के लिए, जीवन के माध्यम से शिक्षा
देवी प्रसाद

24 विद्या भवन में नई तालीम की यात्रा
कालू राम शर्मा

30 नई कोपलें
मार्जोरी साइक्स

36 पत्र की शिक्षा
प्रेमपाल शर्मा

38 रंगमंच और बच्चे
हेमंत देवलेकर

41 कला शिक्षा का महत्व
मोहन लाल जाट

44 एक अनूठा स्कूल
प्रमोद मैथिल

47 प्रयोग का जुगाड़
शहनाज़ डी.के.

परामर्श–प्रबन्धन : हृदय कांत दीवान
गिरिधर एस.

संपादक : भाग चन्द्र कुमावत

संपादक मण्डल : गुरबचन सिंह
के.आर. शर्मा
कमलेश जोशी
गिरीश शर्मा
रजनी द्विवेदी

चित्रांकन : प्रशांत सोनी

कवर एवं ले–आउट : इसरार अहमद
मो. इकराम

टाइपिंग सहयोग : शाकिर अहमद

वितरण : निशांत कुमावत
✆ 09950912525

संपादकीय पता

विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केन्द्र
विद्या भवन सोसायटी परिसर, फतेहपुरा, मोहन सिंह मेहता मार्ग
उदयपुर (राज.) 313 004
फोन : (0294) 2451497
E-mail : *vbsudr@yahoo.com*

ज्ञान की जरूरत

भगवती लाल व्यास

ज्ञान क्यों
जरूरी है हमारे लिए?
यह एक अहम
सवाल है।
लोग कहते हैं–
ज्ञान के बिना
जीवन है अधूरा
ज्ञान न हो तो
मवेशी और मनुष्य में
फर्क ही कितना है।
ज्ञान से बनता है
जिंदगी का सफर
आसान
ज्ञान से बनता है आदमी
इंसान
ज्ञान से ही
फलती–फूलती है
इंसानियत
ज्ञान से ही बदलता है
आदमी
अपनी और दूसरों की

किस्मत!
क्या हम लोगों की
कही इन बातों पर
ज्यूं का त्यूं यकीन कर लें?
एक खयाली ज्ञान में
खुद को लीन कर लें?
नहीं!
उठाओ हथौड़ा
और छैनी
अपने ज्ञान के
कारीगर तुम खुद हो
तराशो अज्ञान को
ज्ञान की मूरत
प्रकट हो जाए
अगर सामने रखे
बेडौल पत्थर से
निराकार में
आकार दिखने लगे
तुम्हें अपना तो समझो
साकार हुआ ज्ञान का सपना।

भगवती लाल व्यास : हिंदी और मेवाड़ी भाषा के साहित्यकार हैं, उदयपुर (राजस्थान) में निवास।

शिक्षा के बुनियादी मसलों पर गंभीर विमर्श

आप भी पढ़ें, दूसरों को भी पढ़ाएं

विद्या भवन सोसायटी और अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय के संयुक्त प्रयास से दो शैक्षिक पत्रिकाओं– **'शिक्षा की बुनियाद'** और **'खोजें और जानें'** का त्रैमासिक रूप से प्रकाशन किया जा रहा है। इन पत्रिकाओं में स्कूली शिक्षा से जुड़े मुद्दों– पाठ्यक्रम, आकलन, शिक्षक शिक्षा, बुनियादी शिक्षा, बालकेन्द्रित व गतिविधि आधारित शिक्षा के साथ राष्ट्रीय पाठ्यचर्या प्रारूप 2005 के प्रकाश में भाषा, पर्यावरण अध्ययन, गणित व विज्ञान शिक्षण एवं सीखने सिखाने (टी.एल.एम) की सामग्री, शैक्षिक शोध व नवाचार आदि पर गंभीर विमर्श को प्रस्तुत किया जाता है। ये पत्रिकाएं शिक्षकों और शिक्षा कर्मियों के लिए बहुत उपयोगी हैं। हम चाहते हैं कि आप भी इन पत्रिकाओं के नियमित पाठक बनकर इस विमर्श में भागीदार बनें।

सदस्यता सहयोग राशि (डाक/कूरियर खर्च सहित)

शिक्षा की बुनियाद	व्यक्तिगत/संस्थागत	वार्षिक ₹ 200/400	द्वैवार्षिक ₹ 350/700	त्रैवार्षिक ₹ 500/1000
खोजें और जानें	व्यक्तिगत/संस्थागत	₹ 200/400	₹ 350/700	₹ 500/1000

पत्रिका की सहयोग राशि डी. डी./ चेक/एम.ओ. द्वारा **'विद्या भवन सोसायटी', उदयपुर (राज.)** के नाम से भेजी जा सकती है। यह राशि सीधे **'विद्या भवन सोसायटी'** के बैंक एकाउंट नं. 694301000027, ICICI बैंक ब्रांच विद्या भवन सोसायटी, फतेहपुरा, उदयपुर (ब्रांच कोड IFSC ICIC0006943) में भी जमा की जा सकती है।

सम्पर्क विद्या भवन सोसायटी, बिहार परियोजना कार्यालय, रुम न. 108, एस. आई. ई. टी. बिल्डिंग,
एस.सी.ई.आर.टी. कैंपस महेन्द्रू,पटना – 800001, मो.न. 09304995395, **e-mail:ankita@vidyabhawan.org**
भरत कुमार पटेल, म.न. 50,वैशाली रो हाऊस, जे.के.मोटर्स के पास, पाल पटिया, पाल रोड़
जिला–सूरत 395003, मो.न. 09375411144,**e-mail:bharat@vidyabhawan.org**

सदस्यता प्रारूप जिसे भेजा जाना है – निशांत कुमावत, विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केन्द्र, डॉ. मोहन सिंह मेहता मार्ग फतेहपुरा,
उदयपुर– 313004 (राज.), फोन नं. 0294–2451497, मो. न., 09414358108, 09950912525
e-mail: nishant141279@gmail.com

सदस्यता का प्रारूप जो भर कर भेजना है

मैं/ मेरी संस्था शिक्षा की बुनियाद/खोजें और जानें/ दोनों पत्रिकाओं/ की सदस्यता प्राप्त करना चाहता हूं/चाहती हूं/चाहती है, नाम .....पता.....
.....शहर.....राज्य...
.....पिन.....फोन. निवास स्थान/ऑफिस .....
.....मोबाईल नम्बर .....ईमेल.....है।
पत्रिका/पत्रिकाओं की सहयोग राशि एम.ओ./डी.डी./चेक द्वारा भेज दी गई है। सीधे विद्या भवन सोसायटी के बैंक एकाउंट में दिनांक ..... को जमा करा दी गई है अथवा जमा करवा दी जाएगी।

सदस्य का नाम व हस्ताक्षर

दिल का रंग

ज्योतिभाई देसाई

स्व. नानाभाई भट्ट जी एक कहानी बताते थे।

बादशाह खड़े थे झरोखे में।

सुन्दर सुबह हो रही थी।

एक नौजवान उसी रास्ते पर पूरे उत्साह से भरा जा रहा था। वह माथे पर बहुत आकर्षक गुलाबी रंग का साफा बांधे हुए था। उसकी चाल, उसका उत्साह और उसके बेनमून साफे के ऊपर राजा बहुत खुश हो गए।

''कोई है! वह नौजवान जो जा रहा है, उसे यहां ले आओ।''

उस नौजवान को पेश किया गया।

बादशाह ने फरमाया ''यह साफा कहां से लाए हो? मैं तो आफरीन हूं तुम्हारी शान पर।''

''जहांपना! गरीब आदमी पर रहम करें। यह साफा, उस नदी पार एक रंगरेज महिला रहती है; उनसे प्राप्त किया है। कोई गुनाह हो, तो माफ कर दें। आपको भगवान सौ साल का कर दें। मुझे जाने दीजिए।''

तब बादशाह ने नदी पार रहने वाली उस महिला को बुलाने का हुकुम दिया। ''देखो, हमें उस नौजवान को जैसा साफा दिया है, वैसा चाहिए। बिल्कुल वही गुलाबी मजेदार रंग और उसी किस्म का महीन, पूरा असल स्वरूप बने, ऐसा करके लाओ। हम खुश होंगे, तो जो मांगो, वही दिया जायेगा, नहीं तो...''

''मालिक! आपके वास्ते में पूरी कोशिश करूंगी, दो महीने लगेंगे। आपकी रस्म चाहिए। मैं ठीक वैसा ही साफा बना के लाऊंगी।''

वह रंगरेज महिला दो महीने बाद साफ ले आई। बादशाह ने देखा, तो बहुत अच्छा लगा था, फिर भी कुछ कमी भी लगती थी। ''क्यों, तुम्हें अक्कल नहीं क्या? इसमें तुमने अपनी सारी शक्ति और कारीगिरी क्यों नहीं लगाई? अब तुझे क्यों न मैं हमारे राज्य से निकाल बाहर कर दूं। मैंने बहुत जताया था ना।''

''महाराज! मैंने कपड़ा बुनने में, रंग के वास्ते, जो सारी कारीगरी करनी थी, वह बिलकुल उस नौजवान के साफे की तरह ही की थी। इस वास्ते मैं पूरे दो महीने चिंता में ही थी कि कहीं आप नाराज न हों। मैंने कोई फरक किया ही नहीं। अब रंग तो वही है ना!''

''नहीं, नहीं! यह असल बात नहीं है। कहीं कुछ कमी रह गयी है। तू, बादशाह को समझा देना चाहती है,'' प्रधानजी बोल पड़े।

''बोल सच बोल! क्या बात है? तूने क्यों उस नौजवान जैसा साफा नहीं बनाया!'' बादशाह आग बबुला हो गए।

''महाराज! जहांपना, मैं बेकसूर हूं। आप माफ

करें। आपका हुकुम मेरे सर माथे पर है। और एक पूरी सोच के साथ, मैंने मेहनत की है। एक ही फरक होना संभव है।''

''वो नौजवान मेरा शौहर है! उनके वास्ते, मैं जो कुछ कर पाऊंगी, वह आपके वास्ते करना कैसे संभव है।''

''उनके साफे में दिल का रंग पड़ा है। आपके साफे में चिंता का, डर का विष भी हो सकता है।''

स्व. नानाभाई ऐसी कहानी का नाम 'दिल का रंग' देते थे। और अपने शिक्षक साथियों, नौजवान कार्यकत्ताओं को आह्वान देते थे कि अगर वे शिक्षक बनें तो, उसमें अपना 'दिल का रंग चढ़ाना' अत्यावश्यक है।

इस दिल का रंग चढ़ाना माने क्या? शिक्षक बनें, तो उसकी जो प्रधान आवश्यकता है, उसे वे समझें। इसमें केवल रटे रटाए सिद्धान्तों को पहुंचाने की बात नहीं है।

हर बात में बच्चों को उनकी अपेक्षाओं को समझकर प्रोत्साहित करना है। एक भी बच्चे को अपमानित न करने का भी इसमें आग्रह है।

जब 'दिल का रंग चढ़ाना है' तो अपनी क्षमता बढ़ाते रहना चाहिए। केवल परीक्षाओं में उत्तीर्ण करवाने का खेल नहीं खेलना है।

वास्तव में, अपने को जिन बच्चों की जिम्मेदारी सौंपी जा रही है, उन सबको और हरेक व्यक्ति को आत्मविश्वास से भरना है। आज हमारे में अपना खुद का आत्मविश्वास नहीं है। जो सिखा रहे हैं, उन बातों में भी हम केवल औपचारिकता निभा रहे हैं। शिक्षा कोई विधि, युक्ति, प्रयुक्ति, प्रोजेक्ट आदि से नहीं दी जा सकती।

हकीकत यह है कि शिक्षा देना ही गलत संदर्भ है। शिक्षा खुदबखुद प्राप्त करनी होती है। अतः हम शिक्षकों को बच्चों को ऐसे वातावरण देने की आवश्यक है जिससे बच्चे अपने आप अपनी सोच, उत्साह और नए गतिविधियों को निर्मित करने की कोशिश करें।

बच्चे खुद प्रयत्न करके, जो प्राप्त करेंगे, उन्हें जो आत्मविश्वास मिलेगा, और हर परिस्थिति को समझ कर जो मार्ग निकलेगा, वह, अपने ही भरोसे बनाया होगा, उन्हें कोई रूकावट रोक नहीं सकती।

साईकिल चलाना सीखना है, तैरना सीखना है, तो खुद चलाना पड़ता है, खुद और कैसे बैलेन्स प्राप्त करना है, यह सब प्रयत्न से ही होगा ना। तैरना सिखने में केवल कसरत करना तो नहीं है। कभी डूबना भी ध्यान में रखते हुए, पानी के ऊपर रहना, खुद प्राप्त करना पड़ता है ना।

जीवन में यही अनुभव की बात हमें लेनी है। केवल नौकरी करके, सेवानिवृत्ति तक बिना पूछे, बिना सोचे जीना, माने अपने आपका अपमान करना होगा। प्राप्त शक्तियों का खोना होगा।

अतः नई तालीम की शिक्षा, किताबी शिक्षा में रटे हुए उत्तर देने से हटकर स्वावलंबन, आत्मविश्वास की शिक्षा प्राप्त करने के वास्ते है।

ज्योतिभाई देसाई : गांधी की बुनियादी शिक्षा को सही मायनों में साकार करने वाले शिक्षक रहे हैं। लंबे समय तक गांधी विद्यापीठ वेड़छी में शिक्षक प्रशिक्षक के रूप में कार्य किया। बुनियादी शिक्षा के विभिन्न पहलुओं पर अनेकों लेख प्रकाशित। वर्तमान में 'उर्मिला' गांधी विद्यापीठ के पीछे, वेड़छी जिला–सूरत (गुजरात) में निवास।

बुनियादी शिक्षा का ताना–बाना

गुणसागर शर्मा 'सत्यार्थी'

गांधीजी का शिक्षा–दर्शन आज और अधिक व्यावहारिक और समय की मांग हो गया है। भारत जैसे देश में शिक्षा का स्वरूप मूलतः क्या था? और मैकॉले के कारण क्या से क्या हो गया? इस बात को गांधीजी ने गम्भीरता से सोचा और देश–काल परिरिस्थति के मद्देनजर उन्होंने देश के लिए उपयोगी और कारगर शिक्षा सुझाई, जिसे पहले ''नई तालीम'' नाम दिया गया फिर ''बुनियादी शिक्षा''। परंतु बुनियादी शिक्षा की बुनियाद में ही हम बापू के मार्ग से भटक गए। कुटीर उद्योग को उन्होंने आवश्यक माना और उसके प्रतीक के रूप में 'चरखा' चुना, जिसे विधिवत कांग्रेस के झंडे में भी अंकित करवाया। बस, उस चरखे को देखकर हम भ्रमित होते चले गए और बुनियादी शिक्षा का मतलब सिर्फ हाथ से सूत कातना मान बैठे। इन पंक्तियों का लेखक उत्तर प्रदेश राज्य की एक प्राथमिक शाला का तब छात्र था। अन्य विषयों की पढ़ाई के बाद शाम को छुट्टी होने के पूर्व 'बेसिक शिक्षा' का पीरियड होता था, जिसमें हम बच्चे गीत गाते हुए तकली से सूत काता करते थे– 'तकली चलाने वाले हिम्मत न हार जाना।' गीत गाते–गाते अंत में हिम्मत ही हार बैठे। कह दिया गया कि बुनियादी शिक्षा असफल है। यदि बुनियादी शिक्षा मतलब शिक्षण कार्य से इतर एक पीरियड में तकली से सूत कातना मात्र है, तो अवश्य यह फतवा सही माना जा सकता है कि ''बुनियादी शिक्षा असफल है।'' परंतु खेदजनक स्थिति यही रही कि गांधी जी की इस शिक्षा रूपी भवन के पहले स्तम्भ रहे– डा. जाकिर हुसैन भी हिम्मत हार बैठे और उन्होंने भी मान लिया कि यथार्थ में यह असफल है। उन लोगों के ऐसे कथन से मेरी अन्तरआत्मा सहमत नहीं हो पा रही है।

मैकॉले की शिक्षा का उद्देश्य मात्र पढ़ना–पढ़ाना था, गढ़ना नहीं। जबकि भोले–भाले बच्चे तोते तो नहीं, जिन्हें पढ़ाया जाए अर्थात् रटवाया जावे। गांधीजी की शिक्षा 'सीखने और सिखाने' की बुनियाद पर खड़ी होती है। पुस्तकों को रटवा दिया जाए और रटी हुई विद्या को ज्यों का त्यों परीक्षा की उत्तर पुस्तिकाओं में लिख दिए जाने का मतलब शिक्षित होना मान लिया गया और उन्हें प्रमाण–पत्र व डिग्री दे दी गई। परंतु उन प्रमाण–पत्र या डिग्रीधारी कथित शिक्षितों ने सीखा क्या? इसकी ओर ध्यान ही नहीं दिया गया। इस पढ़ने–पढ़ाने वाली शिक्षा से नैतिकता का दूर का भी वास्ता नहीं है। अतः इस शिक्षा से बच्चों के कंधों पर केवल बस्ते का बोझ ही बढ़ा, नैतिक गुण बिल्कुल ही नहीं आए। इस शिक्षा से निकले निकम्मे ही बने, जो घर में अपनी कमीज का बटन टूटने पर अपने हाथ से उसे लगा भी नहीं सकते। वे केवल नौकरी का ही मुंह ताकते रहे और इतनी नौकरियां है कहां, जो इन सभी कथित शिक्षितों को मिल जाती...। परिणाम यह हुआ कि देश में बेरोजगारी बढ़ती चली गई, आने वाली पीढ़ी नैतिक गुणों से हीन होती गई, अतः भ्रष्टाचार और घोटालों का तो लोक व्यापीकरण ही होता चला गया।

इसलिए मेरा कथन यही है कि ''गांधीजी का शिक्षा–दर्शन आज की परिस्थितियों में समसामयिक

है।'' आज देश के सामने एक ही विकल्प शेष है कि गांधीजी के शिक्षा–दर्शन को मूर्तरूप में अपनाएं और पढ़ने–पढ़ाने के स्थान पर सीखने–सिखाने की ओर शिक्षा को साकार करे।

सीखने की प्रक्रिया रटना–रटाना नहीं, हाथ से कुछ करना होती है। बच्चों की मूल प्रवृत्ति कुछ न कुछ करने की होती है। बच्चों की इस मूल प्रवृत्ति का लाभ सिखाने वाले (पढ़ाने वाले नहीं) शिक्षक को लेना चाहिए। यथा– बच्चे के हाथ में कैंची आ जाए और अपने आनन्द के लिए तरह–तरह से कैंची को कागजों पर चलाने लगे, यह सोचे बगैर कि यह कागज काम का है या फालतू। ऐसे में आपका जरूरी कागज भी कट जाए। तो आप बच्चे पर टूट पड़ेंगे, उसकी पिटाई तक कर देंगे कि नालायक! तूने मेरा जरूरी कागज काट कर नष्ट कर दिया? बच्चे का आनन्द समाप्त हो जाएगा, बच्चा भीतर ही भीतर टूट जाएगा। सोचिए, हम अनजाने में कितना बड़ा अपराध कर रहे हैं। इसके विरुद्ध यदि हम बच्चे के इस आनन्द में सहभागी बनें और उसे कोरा कागज देकर लिफाफा बनाना सिखाएं, वह कागज पर आकार बनाना सीखे फिर उसे अपेक्षित ढंग से काटे, तो अपने आनन्द के साथ उस बच्चे ने ज्योमैट्री भी सीख ली– आड़ी, खड़ी, तिरछी, समानान्तर रेखाएं, ... आदि। फिर लिफाफे की कीमत कक्षा में बनाए लिफाफों का मूल्य, लागत मूल्य, लाभ और हानि... आदि व्यावहारिक गणित खेल–खेल में बच्चे ने सीखा और समझा। लिफाफे के उपयोग में पत्र लेखन, भाषा ज्ञान, पत्र कैसे आते–जाते? अतः आवागमन के साधन, पत्र कहां जाते हैं? नगर, महानगर, ग्राम आदि कितना सारा ज्ञान बगैर किसी बस्ते के सहज ही खेल–खेल में आनन्द के साथ बच्चे ने आत्मसात किया और सीख लिया लिफाफा बनाना। यह उत्पादन क्रिया–कलाप है। इस क्रियाकलाप को गांधीजी ने 'शिक्षा में समवाय' नाम दिया। हम समवाय को भूल गए और किसी एक पीरियड में तकली से सूत कतवा कर या छोटा मोटा गत्ते का काम करवा कर गांधी जी की बुनियादी शिक्षा का कागजी घोड़ा ही दौड़ाते रहे, जब कागजी घोड़ा नहीं दौड़ा, तो बुनियादी शिक्षा असफल होने का फतवा दे बैठे।

फिर भी हमारे शिक्षाशास्त्रियों ने हस्तशिल्प को शिक्षा से जोड़ने का प्रयास किया। चाहे मुदालियर कमीशन हो या कोठारी कमीशन, सभी ने हस्तशिल्प को जरूरी माना। परन्तु गलती वहीं हुई कि 'कार्यानुभव' नाम से या 'समाजोपयोगी कार्य' नाम से शिक्षण से इतर उसे अलग पीरियड में करवाया गया और पढ़ना–पढ़ाना यथावत चलाया गया।

समवाय का शाब्दिक अर्थ होता है जुलाहे का ताना और बाना। जुलाहा जब करघे पर कपड़ा बुनता है, तो पहले लम्बाई में सूत फैलाता है, जिसे ताना कहते हैं और फिर बैंच के माध्यम से ताने के सूत को क्रमशः नीचे–ऊपर करता हुआ 'शटल' से आड़े में जो सूत बुनता है उसे बाना कहते हैं। यदि ताना ही ताना हो, तो कपड़ा नहीं बनेगा और मात्र बाना ही बाना भी कपड़ा नहीं बना सकेगा। ताना और बाना दोनों एक साथ परस्पर पूरक होकर काम करते हैं, तभी कपड़ा बनकर तैयार होता है। गांधी जी ने ताने की तरह कुटीर उद्योग या हस्तशिल्प के क्रियाकलापों को विस्तारित कर, उसमें शिक्षक रूपी शटल द्वारा ज्ञान का बाना बुनने की कल्पना समवायी शिक्षण में की थी। लिफाफे के ही तरह बच्चों से उत्पादक क्रियाकलाप करवाए जाएं और उन क्रियाकलापों से अपेक्षित विषयों का ज्ञान रूपी बाना भरवाया जाए। यदि हम करते, तो बुनियादी शिक्षा कभी असफल हो ही नहीं सकती थी।

बुनियादी शिक्षा, प्राथमिक स्तर पर स्कूली शिक्षा में तो हस्तशिल्प और कुटीर उद्योग से समवाय करने में सफल होती है। उसके आगे आधुनिक विज्ञान में क्रियाकलापों को ताने के रूप में हम विस्तारित कर सकते हैं। समाजोपयोगी उत्पादक कार्य इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों एवं कम्प्यूटर द्वारा भी होते हैं। उन्हें ताने के रूप में उपयोग में लाएं और अपेक्षित विषयों का ज्ञान बाने के रूप में बुना जाए। इस प्रकार समवायी शिक्षण पद्धति से शिक्षित होकर निकलने वाले छात्र सिर्फ नौकरी के मुहताज नहीं रहेंगे। यह शिक्षा स्वयं में रोजगारोन्मुखी अपने आप हो जाएगी। इसी निवेदन के साथ गांधीजी के शिक्षा–दर्शन के पक्ष में अपनी बात रखते हुए कहूंगा कि शिक्षा को समवाय से जोड़े बिना, गांधीजी का नाम शिक्षा संदर्भ में जोड़ने का किंचित कोई मतलब नहीं।

गुणसागर शर्मा 'सत्यार्थी' : लगभग चालीस वर्षों तक बीटीआई (वर्तमान में डाइट) में शिक्षण कार्य किया। नई तालीम में समवाय पर गहरी पकड़। बुंदेली भाषा के मूर्धन्य साहित्यकार एवं कवि हैं। कुंडेश्वर, टीकमगढ़ (मध्यप्रदेश) में निवास।

बुनियादी शिक्षा का सर्वोदय दर्शन

दयाल चंद्र सोनी

शिक्षा का काम केवल तरकीब या पद्धति तक सीमित नहीं है। सच्ची शिक्षा के पीछे कुछ मान्यता, श्रद्धा, विश्वास, उद्देश्य, आदर्श अथवा दर्शन भी अवश्य रहता है। शिक्षा केवल इसी में ही सीमित नहीं है कि ज्ञान–विज्ञान का प्राचीन संचय नई पीढ़ी को हस्तांतरित कर दिया जाए। शिक्षा विकास की दिशा और विकास की गति है। अतः शिक्षा एक शाश्वत पुनर्दिग्वर्तन या 'री–ओरियंटेशन' है। मनुष्य भूतकाल को कायम रखने के लिए ही नहीं जीता और न वह वर्तमान से ही संतुष्ट रहता है। बल्कि मनुष्य–जाति हमेशा भविष्य के स्वप्न में जीती है। 'भूत तो ऐसा हुआ, पर भविष्य ऐसा बनाएंगे' इस मानव–अभिलाषा में ही मनुष्य–समाज में शिक्षा या तालीम का आविर्भाव होता है। तालीम की सारी प्रेरणा इस तथ्य में निहित है कि मनुष्य–जाति अपने भविष्य को संवारना चाहती है। अतः जो तालीम किसी श्रद्धा, आदर्श एवं दर्शन को मानकर नहीं चलती, उस तालीम में से प्रेरणा तत्त्व समाप्त हो जाता है। उस शिक्षा में निष्ठा का अभाव हो जाता है। तालीम केवल शिक्षकों की आजीविका का प्रश्न नहीं है। तालीम का काम केवल इतने में ही समाप्त नहीं होता कि वर्तमान समाज के जो गुण–दोष हैं, उनकी उपेक्षा करके विद्यार्थियों को जैसे–तैसे उसी समाज के साथ अपना मेल बैठाना आ जाए, ताकि वे उस समाज में सुविधा से अपना गुजारा कर सकें। समाज के साथ हमारी भावी पीढ़ी का मेल बैठाना, यह तो शिक्षा का आधा काम ही है। शिक्षा का शेष आधा काम यह है कि विद्यार्थियों में समाज की वर्तमान बुराइयों के प्रति असंतोष जगाया जाए और उन्हें नवीन आदर्शों के लिए काम करने के लिए तैयार किया जाए। समाज में कोई स्थिर और अचल वस्तु नहीं है, बल्कि उसमें एक गति और स्पंदन है। समाज की यह नदी किसी लक्ष्य–सिंधु की ओर निरंतर बढ़ती रहती है। समाज का यह आगे बढ़ना उसकी शिक्षा व्यवस्था द्वारा संपन्न होता है। अपने को बदलने के लिए समाज पहले अपनी शिक्षा को बदलता है। कारण यह है कि मनुष्य एक अस्तित्व मात्र से संतुष्ट नहीं होता, उसके जीवन के लिए एक आदर्श भी आवश्यक है। मनुष्य का स्वभाव यह है कि जो कुछ वह आज है, उसी से उसका समाधान नहीं होता; बल्कि आज की परिस्थिति में से निकलकर कल वह कुछ और बनना चाहता है और उसमें भी एक विशेषता यह है कि जो कुछ मनुष्य आज नहीं कर पाया है, उसे भावी पीढ़ी के माध्यम से पूर्ण करना चाहता है और इसी में से शिक्षा का जन्म होता है। इस दृष्टि से सामाजिक उत्क्रांति या मानव–विकास का नाम ही शिक्षा है। शिक्षा का दर्शन से घनिष्ठ संबंध है और किसी भी शिक्षा–योजना को समझने के लिए उसके पीछे जो जीवन–दर्शन है, उसे समझना बहुत ही आवश्यक है।

स्पष्ट है कि जो शिक्षा–योजना गांधीजी के मस्तिष्क में से निकली, उसका जीवन–दर्शन वही हो सकता है, जो गांधीजी का जीवन–दर्शन था। अतः यदि हम बुनियादी शिक्षा को भली प्रकार समझना चाहते हैं, तो हमें गांधीजी के जीवन–दर्शन को समझना होगा और यह भी देखना होगा कि

गांधीजी ने इस दर्शन को बुनियादी शिक्षा योजना में किस प्रकार चरितार्थ किया है। बुनियादी शिक्षा को इस प्रकार जब हम उसके दर्शन के संदर्भ में समझेंगे, तभी हम उसे यथार्थ रूप में समझ सकेंगे।

यह बात सर्वविदित है कि गांधीजी का सारा दर्शन सत्य और अहिंसा में से ही निकला था। सर्वोदय, सत्य और अहिंसा से निकलनेवाले इस दर्शन का ही नाम सर्वोदय है। गांधीजी ने या उनके अनुयायियों ने कभी यह पसंद नहीं किया कि गांधीवाद के नाम से कोई वाद चलाया जाए। इसका कारण यह है कि गांधीजी ने सत्य और अहिंसा पर जो बल दिया और उसका जो प्रयोग किया, तो वे ऐसा नहीं मानते थे कि सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों का कुछ उन्होंने ही नया आविष्कार किया हो। सत्य और अहिंसा के दोनों सिद्धांत बहुत ही प्राचीन हैं। इसी प्रकार सर्वोदय नाम चाहे नया हो, पर विचार नया नहीं है। स्वयं गांधीजी को यह नाम रस्किन की एक किताब 'अन टू दिस लास्ट' से सूझा था और रस्किन ने भी जो विचार प्रस्तुत किया था, वह बाइबिल की एक कहानी पर से आया था, जिसमें एक बगीचे का मालिक अपने उस मजदूर को भी, जो कि शाम होते–होते ही काम पर लगाया गया था, उतनी ही मजदूरी चुकाता है, जितनी कि वह उस मजदूर को देता है, जिसे उसने उस दिन सुबह से काम पर लगाया था। इस पर दूसरे मजदूर आपत्ति अवश्य करते हैं, पर वह मालिक उनकी आपत्ति पर कोई ध्यान नहीं देता और ऐसा महसूस करता है कि इस अंतिम मजदूर को भी भरपेट भोजन पाने का हक है, और कम समय तक काम प्राप्त होने के कारण यदि किसी को कम भोजन मिलता है, तो यह समाज की, मनुष्यता की कमी है। दर्शन वास्तव में चीज ही ऐसी है कि यदि वह सच्चा है, तो वह नया या पुराना नहीं हो सकता। सच्चा

दर्शन वह है, जो कि सनातन है। उस सनातन दर्शन की व्याख्या और प्रयोग देश–कालानुसार नया–नया हो सकता है, पर जो मूल सिद्धांत है, वह नया या पुराना नहीं हो सकता है। अतः सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों को हम गांधीजी की विचारधारा के अनुसार अपनी आज की समस्याओं के साथ समझ तो अवश्य सकते हैं, पर सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों को नया नहीं कह सकते और न यह कह सकते हैं कि ये सिद्धांत गांधीजी के नए आविष्कार थे।

यह स्थान उसके लिए उपयुक्त नहीं है कि हम सत्य और अहिंसा की विशद व्याख्या करते हुए सर्वोदयी दर्शन को विस्तार से समझने का प्रयत्न करें, क्योंकि इस विषय पर तो किसी उपयुक्त और अधिकारी विद्वान द्वारा अलग से ग्रंथ ही लिखा जाना उचित हो सकता है। फिर भी यहां हम संक्षेप में सत्य, अहिंसा और सर्वोदय पर कुछ प्रकाश डालेंगे, ताकि हम यह देख सकें कि

बुनियादी शिक्षा की योजना में गांधीजी ने उन सिद्धांतों को किस प्रकार चरितार्थ करने की कोशिश की है।

गांधीजी के अनुसार सत्य वह मूल अगोचर धातु, द्रव्य या तत्त्व है, जिससे यह समस्त ब्रह्मांड, जो विविध और विभिन्न प्रतीत होता है, बना हुआ है। जो कुछ हमें विभक्त रूप से इस सृष्टि में दिखाई देता है, उस सबकी तह या जड़ में एक ही अविभक्त और सर्वव्यापी तत्त्व है, जिसे सत्य (अर्थात् टिकने वाला) या परमात्मा कहा गया है। इस ज्ञानरूपी प्रकाश की प्राप्ति ही जीवन का मूल प्रयोजन है और इसी में जीवन का सबसे बड़ा पुरुषार्थ, सबसे बड़ा आनंद, सबसे बड़ा लाभ और सबसे बड़ी सिद्धि है। इस सत्यरूपी परमेश्वर को प्राप्त करने का प्रत्यक्ष और रामबाण उपाय अहिंसा है, क्योंकि हिंसा तभी बरती जा सकती है, जबकि हम यह मानें कि हम दूसरों से भिन्न हैं। जो अपने साथी या दुश्मन में भी अपने को ही देखेगा, वह अवसर पड़ने पर अपने साथी या दुश्मन को सताने के बदले स्वयं ही कष्ट झेलना सुविधा की बात समझेगा। सत्य का मतलब यदि यह है कि 'मैं', 'तू' और 'वह' ये तीनों तत्त्वतः एक ही हैं, तो उसका व्यावहारिक अनुभव और प्रयोग अहिंसा से ही हो सकता है। जो सत्य को जानता है, वह दूसरे के सुख में अपना सुख, दूसरे के दुःख में अपना दुःख, दूसरे से प्रेम करने में अपने प्रति प्रेम, दूसरे के लाभ में अपना लाभ और दूसरे की सेवा में अपनी सेवा समझेगा और यही अहिंसा या प्रेम है। सृष्टि की मौलिक एकता एक सूक्ष्म और अगोचर तथ्य है, परंतु अहिंसा द्वारा हम उसे प्रत्यक्ष अनुभव की वस्तु बना सकते हैं। वास्तव में सत्य और अहिंसा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, और सत्य को जो मानता है, वह अहिंसा को मानने से इनकार नहीं कर सकता। तमाम धर्मों में अहिंसा को ही सार बताया गया है। जहां ईसा का उपदेश यह है कि दूसरों के साथ वैसा ही बर्ताव करो, जैसा कि तुम अपने लिए चाहते हो, वहां भारतीय शास्त्रों में भी यह कहा गया है कि जिसे अपने प्रतिकूल मानो, वैसा आचरण दूसरों के प्रति मत करो, यही धर्म का सार है।

अहिंसा और प्रेम के इस सिद्धांत से यह दुनिया पहले भी अपरिचित तो नहीं थी, पर अभी तक प्रेम का व्यवहार केवल अपनों के प्रति ही होता आया था। गांधीजी ने प्रेम या अहिंसा को दुश्मनों से युद्ध करने में काम में लेकर एक नया चमत्कार कर दिखाया। यह उनकी एक महान् देन रही है। गांधीजी का कहना था कि दुश्मन में भी यही एक सत्य रम रहा है और इसलिए मित्र या शत्रु, कोई भी प्राणी ऐसा नहीं है, जिसके प्रति अहिंसा या प्रेम का व्यवहार नहीं किया जाना चाहिए। अतः उनका मत था कि समाज में हिंसा और भय के बजाय प्रेम का शासन होना चाहिए और यह प्रेम किसी जाति या राष्ट्र के घेरे में सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि प्रत्येक अदना से अदना और कमजोर से कमजोर तक और जो दुश्मन है, उस तक भी पहुंचना चाहिए। प्रेम और एकता के इस घेरे में कोई भी बाहर न रहे और सबमें सत्य का अंश स्वीकार किया जाए। कुछ ही लोगों का सुख अभीष्ट न हो। न बहुतायत का सुख ही अभीष्ट हो। बल्कि सभी लोगों का सुख अभीष्ट हो। कुछ ही लोगों की उन्नति अभीष्ट न हो, न बहुमतवालों की उन्नति तक ही सीमित रहा जाए; बल्कि सबकी उन्नति अभीष्ट हो और सबके उदय का प्रयत्न किया जाए, सबको प्रेम और ममता प्राप्त हो। इसी को चाहे सत्य और अहिंसा का नाम दीजिए, चाहे सर्वोदय का नाम दीजिए, बात एक ही है।

सर्वोदय के मूल में महज सब व्यक्तियों की समानता का ही सिद्धांत नहीं है, जो कि जनतंत्र का वर्तमान सिद्धांत है। जब सब मनुष्यों को केवल समानता का दर्जा देकर बात समाप्त कर दी जाती है, तब ही तो जनतंत्र का वर्तमान बहुमतीय शासन कायम होता है, जिसमें 51 की राय को 49 की राय के

मुकाबले में विजय प्राप्त हो जाती है। जब सब लोग समान हैं, तो गणित के अनुसार 49 की तुलना में 51 को अवश्य ही विजय होना चाहिए। पर सर्वोदय समानता के सिद्धांत से एक कदम आगे बढ़कर यह कहता है कि सब व्यक्ति केवल समान ही नहीं हैं, सभी व्यक्ति एक भी हैं। 'मैं', 'तू' और 'वह' ये तीनों निःसंदेह समान हैं, पर वे समान ही नहीं हैं; बल्कि तत्त्वतः ये तीनों एक भी हैं। अतः सर्वोदय 49 की तुलना में 51 को महत्त्व देकर ही संतुष्ट नहीं हो जाता, जो कि जनतंत्र और बहुमत का सिद्धांत है। कहा गया है कि बहुमत तो प्रायः मूर्खों का होता है और दानाई तो कई बार बहुत अल्पमत में पायी जाती है। इसलिए बहुमत को हम हमेशा सही नहीं मान सकते। अतः सर्वोदय का सिद्धांत जहां तक मैं समझता हूं, यह है कि एक, निन्यानबे और सौ ये तीनों ही समान हैं। (1=99=100)। सर्वोदय वह मंजिल है, जहां व्यष्टि और समष्टि की समस्या समाप्त हो जाती है। मैं समझता हूं कि सर्वोदय के लिए उपनिषदों में बहुत प्राचीन काल में ही आधार बन चुका था। उपनिषद् में लिखा है :

ओउम् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।
(ईशोपनिषद्)

अर्थात् वह (ईश्वर) पूर्ण है और यह (जगत्) पूर्ण है तथा पूर्ण से ही पूर्ण प्रकट होता है। पूर्ण में से जब पूर्ण निकाल लिया जाता है, तो जो शेष रहता या बचता है, वह भी पूर्ण ही है। उपनिषद् के इस प्राचीन और प्रामाणिक वचन के अनुसार तत्त्वतः एक, निन्यानबे और सौ में कोई भेद नहीं है। यही सर्वोदय का दर्शन है।

वास्तव में सर्वोदय को जनतंत्र की आगे की मंजिल या जनतंत्र का संशोधित रूप माना जाना चाहिए। हम देखते हैं कि जिस जनतंत्र का हमने बड़ी अभिलाषा से स्वागत किया था, आज जनता उससे असंतुष्ट है। चाहे अपने देश के बाहर, हम शेष दुनिया को भी क्यों न देखें, हम यह पाएंगे कि जनतंत्र ने दुनिया की बहुत–सी समस्याएं हल करके भी बहुत–सी समस्याओं को अभी अनसुलझी ही छोड़ रखा है और हम यह कह सकते हैं कि बहुमत की प्रणाली से मानव समस्याओं के हल के मार्ग पर, हम बहुत दूर तक नहीं जा पाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि सबको समान मात्र माना जाए या चाहे न माना जाए, पर सबको एक मानना उससे भी अधिक आवश्यक है। आज की समस्याएं इस तरह हल होंगी कि जब दो व्यक्ति या दो समूह मिलें, तो वे आपस में यह कह सकें कि मुझमें तू है और तुझमें मैं हूं। पृथक्ता की भावना को समाप्त करने की आवश्यकता है, क्योंकि पृथक्ता केवल ऊपरी है और सत्य यह है कि भीतर से हम सब एक ही हैं।

आज जनतंत्र तो आवश्यक है, पर पृथक्ता की भावना के कायम रहने से आम ढर्रा यह चल रहा है कि पहले अधिक–से–अधिक स्वयं खाओ और तब दूसरे को भी इतना खिलाओ कि वह जीवित रह सके और हमारे लाभ के लिए काम करता रह सके। आज अमीर लोग ही ऐसा नहीं सोचते, गरीब लोगों का भी विचार तो ऐसा ही है, चाहे वे मजबूरी के कारण ऐसा कर सकने का मौका न पाते हों। यही कारण है कि आज समाज में भयंकर होड़ और शोषण है। इस होड़ और शोषण के कारण वर्तमान युग में महान् और आश्चर्यजनक वैज्ञानिक प्रगति के बावजूद दुःख, चिंता, अभाव, द्वेष, हिंसा और शत्रुता आदि बुराइयां पूर्ववत् विद्यमान हैं, जिनसे जागतिक युद्धों की आशंका बनी रहती है; बल्कि कहना चाहिए कि कुछ सीमा तक वैज्ञानिक साधनों का उपयोग करके ये बुराइयां पहले से भी अधिक समर्थ बन गई हैं। जीवन–यापन के लिए मनुष्य को भी सामग्री चाहिए, आज के विज्ञान के कारण यह इतनी अधिक हो सकती है कि अभाव और गरीबी का नाम ही इस दुनिया से लुप्त हो

जाए। परंतु 'पहले मैं और पीछे तुम' वाली उपर्युक्त रूढ़ मनोवृत्ति के कारण अभाव की पूर्ति कभी नहीं हो पाती और संसार में गरीबी बढ़ती चली जाती है। आज गरीब तो अपने आपको अभावग्रस्त और दुःखी अनुभव करता ही है, पर स्थिति यह है कि अमीर भी अपने आपको संतुष्ट अनुभव नहीं करता। यह आज के संसार की मुख्य समस्या है, जिसको हल किए बिना न तो अमीर सुखी हो सकते हैं और न ही गरीब संतुष्ट हो सकते हैं। यदि विज्ञान की सहायता से संसार की समृद्धि आज से हजारगुनी बढ़ जाए और आबादी आज की तुलना में हजारगुनी कम भी हो जाए, तब भी जब तक एक इंसान दूसरे इंसान से अपने आपको समान मनाते हुए भी पृथक् मानता है और पृथक् मानकर 'पहले मैं और पीछे तुम' वाला सिद्धांत अपनाता है, तब तक दुनिया में सुख, समृद्धि एवं संतोष का साम्राज्य नहीं हो सकता। परन्तु यदि मनुष्य यह समझ ले कि तत्त्वतः हम सब एक हैं और सुख–शांति का रहस्य भौतिक समृद्धि एवं उसके साधनों में उतना नहीं है, जितना उपलब्ध भौतिक समृद्धि और उसके साधनों को सब लोगों के बीच भली प्रकार बांट देने में हैं, तो मनुष्य जाति प्रत्येक अवस्था में सुखी रह सकती है। यह बंटवारा जोर और जुल्म या हिंसा से संभव नहीं है, क्योंकि यदि एक बार जोर और हिंसा से यदि ऐसा बंटवारा हो भी गया, तो जब तक प्रकृति एक मनुष्य को दूसरे की तुलना में शारीरिक और बौद्धिक दृष्टि से असमान शक्ति देकर पैदा करती रहती है, तब तक वह जबर्दस्ती की समानता निभ नहीं सकती। अतः समानता, सुख और समृद्धि तो अहिंसा, प्रेम और आंतरिक स्वेच्छा से ही उत्पन्न हो सकती है। निःसंदेह मनुष्य के आज तक के इतिहास में हिंसा बहुत रही है और मनुष्य के मन में अपने इस इतिहास के कारण यह बात रूढ़ हो गई है कि डंडे के जोर के आगे तो गलत बात भी मान लेना और डंडे का जोर जहां न हो, वहां सही बात भी न मानना। परंतु यदि मनुष्य को अहिंसक तरीके से बरता जाए, तो धीरे–धीरे दीर्घकाल में उस पर ऐसा संस्कार डाला जा सकता है कि वह हिंसा के आगे गलत बात को न माने और अहिंसा के आगे सही बात को मान ले। इस परिवर्तन में निःसंदेह देर लगेगी, पर सच्चा और स्थायी परिवर्तन यदि होगा, तो इसी प्रकार होगा, दूसरा कोई मार्ग नहीं है। मनुष्य–जाति यदि आज थोड़ी–बहुत भी सभ्य मानी जा सकती है, तो उसके पीछे वास्तविक कारण यह नहीं कि मनुष्य को डंडे के जोर से सभ्य बनाया गया है, बल्कि उसका मुख्य कारण यह है कि अनगनित प्रेमभरे हृदयों ने समय–समय पर प्रेम का साम्राज्य स्थापित करने के लिए अपनी कुरबानी दी है।

सर्वोदय के तीन व्यावहारिक रूप

सर्वोदय की उपर्युक्त भूमिका को यदि हम स्वीकार करें, तो सत्य और अहिंसा का व्यावहारिक प्रश्न यह बन जाता है कि समाज में आज जो एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति का और एक समूह द्वारा दूसरे समूह का शोषण चल रहा है, उसका निराकरण कैसे हो, किस प्रकार उपलब्ध भौतिक समृद्धि के साधनों का सब लोगों में बिना किसी हिंसा और जोर–जुल्म के बंटवारा हो। इसका उत्तर यह होता है कि प्रथम तो जिन उद्योगों से मनुष्य की मूल भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है, उनका ऐसा विकेंद्रीकरण होना चाहिए कि किसी मनुष्य या किसी गांव के इनके विषय में किसी के आगे मजबूर या लाचार न होना पड़े और लगभग सभी मनुष्यों को रचनात्मक काम से प्राप्त होने वाला आर्थिक, सामाजिक, बौद्धिक और नैतिक लाभ प्राप्त हो।

इसका दूसरा उत्तर यह होता है कि समाज में किसी भी काम को करने के लिए जो साधन काम में लिया जाए, वह शुद्ध और नैतिक होना चाहिए। अच्छे और नैतिक उद्देश्य के लिए भी साधन अशुद्ध या अनैतिक नहीं होना चाहिए।

इसका तीसरा उत्तर यह है कि मनुष्य और मनुष्य के बीच जो असमानता है, उसे मिटाने और समानता उत्पन्न करने के लिए सम्पन्न लोगों को सताया नहीं जाना चाहिए, बल्कि उनकी मानवता को जगाया जाना चाहिए और उनको स्वेच्छा से दान देने और दूसरों को अपने बराबर लाने के लिए प्रेम के द्वारा समझाया जाना चाहिए। इस प्रकार समाज में एक ऐसी हवा बन सकती है, जो सर्वोदय के लिए बहुत अनुकूल हो। यहां कुछ लोग यह कहेंगे कि यह सब मनुष्य की प्रकृति के विपरीत और असंभाव्य है। यहां यह भी कहा जाएगा कि आज जबकि विज्ञान की इतनी उन्नति हो गई है, वेकेंद्रित उद्योगों की सिफारिश करना बड़ी नादानी की बात है। ये प्रश्न गांधीजी को कई बार पूछे गए थे और कई बार गांधीजी तथा उनके अनुयायियों ने इनका यथेष्ट उत्तर भी दिया। यहां संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि प्रेम और बलिदान के साथ जब कोई संत या महापुरुष मनुष्यों को त्याग और दान की शिक्षा देता है, तो जनता कभी उस संत या महापुरुष को निराश नहीं करती। पर जब डंडे के बल पर सबल लोगों को या धनाढ्यों को यह कहा जाता है कि तुम्हें निर्बलों और निर्धनों के लिए त्याग करना ही पड़ेगा, वरना तुम सजा पाओगे, तो इससे उन लोगों के मानस में सहज ही एक प्रतिरोध की भावना घर कर लेती है, जिससे प्रथम तो वे चोरी–छिपे उस कानून और जबर्दस्ती से बचने का प्रयत्न करते हैं और यदि नहीं बच पाते हैं, तो भी निर्बलों और निर्धनों के लिए उनका हृदय–परिवर्तन नहीं हो पाता और इसलिए अवसर पाते ही धनी और सबल लोग निर्धनों और निर्बलों पर फिर हावी हो जाते हैं।

अस्तु यह कहना गलत है कि मानव प्रकृति अहिंसक साधनों से अथवा प्रेम और बलिदान के उपायों से प्रभावित नहीं होती। वास्तव में, बात तो यह है कि मनुष्य अपने इतिहास में डंडे के जोर से इतना अधिक हांका गया है कि उसे यह सूझता ही नहीं कि उसे प्रेमपूर्ण व्यवहार से भी प्रभावित होना चाहिए। अब तो दूसरा प्रश्न है कि आज की वैज्ञानिक प्रगति के युग में ये विकेंद्रित उद्योग (चरखे और तकली) कहां तक काम देंगे और कहां तक ठहर सकेंगे। इस प्रश्न का उत्तर यह है कि हमें विज्ञान की दिशा बदलनी होगी। आज तक विज्ञान का प्रयत्न यह रहा है कि केंद्रित और भीमकाय उद्योगों के लिए यंत्रों का आविष्कार किया जाए। विज्ञान की सहायता से ऐसे उत्पादक यंत्रों का आविष्कार करना होगा और उन यंत्रों में 'परफेक्शन' लाना होगा, जिनकी मदद से व्यक्ति अथवा छोटे समुदाय स्वावलंबन के आधार पर अपनी मूल भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। विज्ञान का कोई अंत नहीं है कि हम यह मान लें कि जो कुछ विज्ञान ने आज कर दिखाया है, उससे अधिक विज्ञान कुछ भी नहीं कर सकता। भविष्य का विज्ञान इस बात पर ध्यान देगा कि ऐसे यंत्रों का आविष्कार किया जाए, जो व्यक्ति और छोटे समुदाय या गांव को सशक्त और स्वाधीन बना सके। इसलिए सर्वोदय के विषय में निराश होने की कोई आवश्यकता नहीं है।

दयाल चंद्र सोनी : विद्या भवन बुनियादी मदरसे के प्रथम प्रधानाध्यापक रहे (1941 में) और बुनियादी शिक्षा को लेकर कार्य किया। उनकी पुस्तक 'बुनियादी शिक्षा क्या और कैसे' से यह आलेख साभार लिया गया है।

जीवन के लिए, जीवन के माध्यम से शिक्षा

देवी प्रसाद

औपनिवेशिक राज के दौरान अंग्रेजों ने किस प्रकार भारत की स्थापित शिक्षा व्यवस्था, उद्योग, कृषि व स्थानीय परम्पराओं और संस्थाओं को नष्ट कर भारत को मानसिक रूप से गुलाम बनाए रखने के लिए क्या दूरगामी रणनीतियां बनाईं, को इस आलेख में प्रस्तुत किया गया है। आलेख में लेखक ने एशियाई देशों के साहित्य के प्रति ब्रिटिश राज का क्या दृष्टिकोण था, गांधीजी के शिक्षा से संबंधित दक्षिणी अफ्रीका के अनुभवों व भारत में उनके शिक्षा से संबंधित प्रयोगों पर भी प्रकाश डाला है। किन परिस्थितियों में गूजरात[1] विद्यापीठ की स्थापना हुई और आगे चलकर कैसे अन्य राष्ट्रीय स्तर के विश्वविद्यालयों की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हुआ, की कहानी इस लेख में बयां की गई है।

औपनिवेशिक राज के दौरान भारत में शिक्षा

औपनिवेशिक राज के खिलाफ स्वतंत्रता आंदोलन के एक अंश के रूप में भारत को शिक्षा नियोजन के संबंध में एक नई सोच की आवश्यकता थी। सबसे पहले, औपनिवेशिक शासकों द्वारा हमारी स्थानीय परम्पराओं एवं संस्थाओं को ध्वस्त करके थौंपी गई शिक्षा पद्धति से छुटकारा पाना जरूरी था, व दूसरा अपनी स्वयं की शिक्षा पद्धति का निर्माण करना जिसके द्वारा सच्चे अर्थ में एक स्वतंत्र व समतावादी भारत का निर्माण हो सके।

उन्नीसवीं सदी के मध्य तक हमारे देश के शिक्षित अभिजात्य वर्ग ने अपनी पहचान बना ली थी। यह भारत के राष्ट्रवाद के विकास व सामाजिक सुधार के प्रारम्भ का काल था। स्वतंत्रता आंदोलन के उस काल में सामाजिक सुधारों की ओर देखने के दो नजरिए थे। कुछ नेता सोचते थे कि हम ब्रिटिश शासकों के स्तर पर तभी पहुंच सकते हैं, जब हम ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली में शिक्षित हों। इन लोगों ने इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु कुछ शिक्षण संस्थाएं भी स्थापित की। हालांकि ये लोग भी अपनी जड़ों को खोजने में विश्वास रखते थे, ये शायद यह सोचते थे कि ब्रिटिश हम पर राज इसलिए कर पाए क्योंकि वे हमसे कई मायनों में बेहतर थे।

दूसरी तरफ, लोगों को अपने वैदिक कालीन समय में वापस ले जाने की भी मुहिम चली। दूसरे शब्दों में यह हमारी सभ्यता की जड़ों को खोजने की मुहिम थी। इन लोगों ने गुरुकुलों की स्थापना की व अन्य पारंपरिक अध्यापन व अधिगम के तरीकों को अपनाया। इन लोगों का मानना था कि भारत अपने पारंपरिक जीवन शैली से भटकने के कारण कमजोर हुआ है।

इन दोनों में से किसी भी विचारधारा ने मूल मुद्दों

1. **1922 में जब अहमदाबाद (गुजरात) में महात्मा गांधी ने 'गूजरात विद्यापीठ' की स्थापना की थी, तब उन्होंने 'गूजरात' शब्द का इस्तेमाल किया था। तब से इसे इसी तरह लिखा जाता है।**

की ओर ध्यान नहीं दिया। मुद्दे जो सच्चे माने में स्वतंत्रता व स्वावलंबन से जुड़े थे।

भारत बुरी तरह से गरीबी झेल रहा था व इसके लोग बेहद हतोत्साहित हो गए थे। भारत के अधिकांश लोगों ने स्वतंत्रता के स्वाद को ही भुला दिया था। उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में देश की सैनिक ताकत, अगर कुल मिलाकर देखें तो काफी बढ़ गई थी। परन्तु 1857 की सैनिक बगावत के बाद लोगों का उत्साह बहुत गिर गया था और ब्रिटिश शासकों ने सोचा कि भारतीय सैनिकों की ताकत के मद्देनजर वे भारत को हमेशा के लिए सैनिक ताकत के बल पर गुलाम बनाकर नहीं रख सकते, अतः उन्होंने चालाकी से देश को निशस्त्र करना प्रारम्भ कर दिया। यहां तक कि एक सामान्य किसान भी अपनी फसल की जंगली जानवरों से रक्षा के लिए बन्दूक नहीं रख सकता था।

रमेश दत्त के अनुसार 18 वीं सदी के मध्य तक भारत औद्योगिक क्षेत्र में एक अग्रणी देश था। पर 19 वीं सदी के अंत में भारत के उद्योगों को नष्ट कर दिया गया था। एक समय जो देश सम्पूर्ण विश्व को कपड़ा निर्यात करता था उसे अब अपनी आवश्यकताओं के लिए ब्रिटेन से कपड़ा आयात करना पड़ रहा था।

रिचार्ड ग्रेग ने 'व्हाइट साहेब्स् इन इंडिया' में लिखा है कि कई देश अपने जहाज भारतीय जहाज निर्माताओं से बनवाते थे। उन्होंने 1670 में लिखा है–

''कई अंग्रेज व्यापारी अपने जहाज हर साल बनवाते हैं। यहां सबसे अच्छी लकड़ी की पैदावार होती है। सबसे अच्छा लोहा समुद्र के किनारे उपलब्ध है . ..इनके पास जहाजों के लिए रस्से आदि सामान बनाने के सर्वोत्कृष्ट तरीके थे।''

लॉर्ड वेल्सले ने 1800 में लिखा–

'कलकत्ता के बन्दरगाह में इंग्लैण्ड सामान ले जाने के लिए 10,000 टन के जहाज उपलब्ध हैं।'

टेलर ने अपनी पुस्तक हिस्टरी ऑफ इंडिया में श्रीमती बेसंट की पुस्तक ''इंडिया बॉन्ड एण्ड फ्री'' से उद्धृत किया है–

'पोर्ट ऑफ लंदन में जब भारतीय जहाजों में भारत का माल आता था, तब वहां के थोक व्यापारियों में इतना अधिक आश्चर्य दिखाई देता था, जितना शायद थेम्स में दुश्मन के बेड़े के आने पर भी दिखाई न दे। पोर्ट ऑफ लन्दन के जहाज निर्माताओं ने इतना शोर मचाया कि आखिर मजबूर सरकार ने भारत के इस उद्योग को नष्ट कर दिया।'

सबसे खराब जमींदारी प्रथा ने मानवीय संबंधों को प्रभावित किया और समाज को स्तरों में विभाजित कर दिया, जो कि भारत के लिए एक अनजान अनुभव था। पंचायतों का सुनियोजित ढंग से नष्ट किया जाना, यहां की स्थानीय स्वशासन पद्धति, प्रशासन व न्यायपालिका को नष्ट करने का बुरा प्रभाव सामाजिक संबंधों पर पड़ा।

औपनिवेशिक शासनकर्ता केवल भारत के उद्योग, कृषि, प्रशासनिक व न्यायिक संस्थाओं व यहां की प्रतिरक्षा प्रणाली को नष्ट कर ही संतुष्ट नहीं हो सकते थे। वे भारत को हमेशा के लिए गुलाम बनाना चाहते थे और अंग्रेजों को यह मालूम था कि केवल भौतिक गुलामी ही पर्याप्त नहीं है, मनोवैज्ञानिक गुलामी भी उनकी लक्ष्य प्राप्ति के लिए सबसे उपयुक्त तरीका हो सकता है। अतः ब्रिटिश राज का सबसे महत्वपूर्ण शिकार यहां की शिक्षा ही बनी।

उपनिवेशकर्ताओं ने शैक्षिक सुधारों पर आधारित एक सुनियोजित दूरगामी रणनीति बनाई। हमारी शैक्षिक परंपराओं को, जो यहां के जनसामान्य में समाहित थी और लोगों में हमारे सांस्कृतिक मूल्यों

को इतने लम्बे समय तक कायम करने का एक सशक्त साधन थी, को कमजोर करने के उन्होंने हर संभव प्रयास किए।

उपनिवेशकर्ताओं का एशियाई देशों के साहित्य के प्रति क्या दृष्टिकोण था हमें इस ओर भी ध्यान देना चाहिए। लार्ड मैकॉले ने उनके प्रसिद्ध मिनट्स में लिखा था –

'मुझे संस्कृत या अरबी भाषा का कोई ज्ञान नहीं था, परन्तु मैं जितना भी कर सकता था, उतना मैंने प्रयास किया है। उनके मूल्यों के बारे में सही आकलन करने के लिए मैंने प्रसिद्ध संस्कृत व अरबी भाषा साहित्य के अनुवाद पढ़े हैं। मैंने यहां व अपने देश में पूर्वी भाषाओं के जानेमाने विद्वानों से चर्चा की है। मैं प्राच्य विद्याओं को प्राच्यवेत्ताओं के मूल्यांकन के आधार पर ही देखने के लिये तैयार हूं। मैंने उनमें से एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं पाया, जो इस बात से इंकार करता हो कि यूरोप के पुस्तकालय की एक अलमारी पूरे भारत व अरेबिया के सम्पूर्ण स्थानीय साहित्य के बराबर है।'

उन्होंने आगे कहा– ''हमें अब ऐसे वर्ग को तैयार करना चाहिए, जो हमारे व लाखों लोगों के बीच जिन पर हम राज कर रहे हैं, दुभाषियों का काम कर सकें। ऐसे व्यक्तियों का वर्ग जो खून व रंग से तो भारतीय हों पर अपनी पसन्द, राय व आदर्शों व बुद्धिमत्ता में अंग्रेज हों।''

भारत के गवर्नर लॉर्ड बेन्टिक ने कहा– ''मैं मिनिट्स में व्यक्त भावनाओं से पूर्णतया सहमत हूं।''

भारत की संस्कृति पर इस प्रकार से सुनियोजित आक्रमण के बावजूद, खासकर हमारी शैक्षणिक परम्पराओं पर, काफी संख्या में संस्थाएं 1835 तक जीवित रहीं। बंगाल के शिक्षा विभाग के अफसर ऐडम्स ने उस समय उस क्षेत्र की स्कूलों का सर्वेक्षण किया। उनके अनुमान से प्रत्येक बत्तीस बच्चों पर एक स्कूल उपलब्ध था और इस प्रकार 150,000 गांवों में स्कूल उपलब्ध थे।

उस समय की भारतीय शिक्षा पद्धति के बारे में मैक्समूलर ने कहा था–

'सामाजिक शिक्षा व किताबों से परे भी शिक्षा जैसी कोई चीज है और शिक्षा भारत में किसी भी क्रिश्चियन देश से उच्च स्तरीय है। यह 3R's की शिक्षा नहीं बल्कि मानवता की शिक्षा है।'

उस समय के कुछ ब्रिटिश अधिकारियों के द्वारा तैयार किए गए कुछ दस्तावेजों से पता चलता है कि कई क्षेत्रों में साक्षारत का स्तर पुरुषों में बहुत ऊंचा – 100 प्रतिशत था। महिलाओं में भी साक्षारता स्तर बहुत कम नहीं था। इसी देश में पिछली शताब्दी के अंत तक साक्षरता स्तर 10 प्रतिशत से नीचे गिर गया। उस समय भारत को एक निरक्षर देश माना जाने लगा।

राष्ट्रीय जागरण

विगत सदी के अंत में, राष्ट्रीय जागरण के अभियानों का पुनर्उद्भव देखा गया था, पर एक भिन्न रूप में– टीपू सुल्तान के युद्ध व सैनिक विद्रोह से भिन्न रूप में आर्य समाज, प्रार्थना समाज व ब्रह्म समाज के उद्भव से लोगों में अपनी सांस्कृतिक धरोहर के बारे में चेतना जागृत हुई और इससे उनमें अपनी पहचान के बारे में भावना पैदा हुई।

सन् 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई जिसका चरित्र राजनैतिक था। यद्यपि इसने स्व–शासन व प्रशासनिक सेवाओं में भारतीयों की भागीदारी की बात करना शुरू किया, परन्तु इसके अधिकांश नेता अंग्रेजी पढ़े हुए थे व लोक–भाषा नहीं बोलते थे, अतः लोग समझ नहीं पाते थे कि कांग्रेस क्या कह रही है। क्योंकि इसके नेताओं का जन सम्पर्क नहीं था। अतः कांग्रेस को जन समर्थन कम मिला।

प्रारम्भ के काल में ब्रिटिश शासन कर्ताओं ने इसका लाभ उठाया और कुछ नेताओं को सहवरित कर लिया, जिससे आन्दोलन के प्रभाव को कम किया गया। परन्तु इस बार वे स्वतंत्रता की लहर को रोक नहीं पाए। उन्होंने उनकी चिर परिचित नीति फूट डालो और राज करो द्वारा इसकी रफ्तार भले ही धीमी कर दी हो।

दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी का शैक्षणिक कार्य

गांधीजी के भारत में किए गए शिक्षा से संबंधित प्रयोगों की चर्चा करने से पूर्व, हम उनके शिक्षा से संबंधित दक्षिण अफ्रीका के अनुभवों की चर्चा करना चाहेंगे।

दक्षिण अफ्रीका में रहने वाले भारतीयों की उनके आत्मसम्मान के लिए संगठित करने के दौरान, गांधीजी को कई अनुभव प्राप्त हुए और उन्होंने अहिंसक तरीकों द्वारा अपने तनाव सुलझाने व सामाजिक संबंधों की पुनर्रचना के बारे में कई प्रयोग किए। इनमें से हमारे लिए शिक्षा संबंधी प्रयोग सबसे महत्त्वपूर्ण हैं।

''अन टू दि लास्ट'' पढ़ने के बाद उन्होंने कहा–

''मैं मानता हूं कि रस्किन की इस महान पुस्तक में मैंने मेरी कुछ गहरी मान्यताओं को खोजा, इस कारण इससे मैं इतना प्रभावित हुआ कि इसने मेरे जीवन को बदल दिया।''

इस पुस्तक की प्रमुख सीखें उनके अनुसार थीं –

(क) व्यक्ति की भलाई सबकी भलाई में है

(ख) एक वकील का काम उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना एक नाई का, क्योंकि दोनों को अपने काम से अपनी आजीविका अर्जित करने का समान अधिकार है

(ग) एक मजदूर अर्थात् जमीन जोतने वाले व्यक्ति व एक कारीगर का जीवन वास्तव में जीने योग्य जीवन है। इस अनुभव ने उन्हें एक नए रास्ते की ओर मोड़ दिया व अधिक तीव्रता व प्रतिबद्धता के साथ, एक ज्यादा बेहतर जीवन की तलाश में।

गांधीजी डरबन से 'इंडियन ओपीनियन' भी संपादित व प्रकाशित कर रहे थे। उन्होंने सोचा, इसे एक खेत पर ले जाना चाहिए, जहां सब लोग मजदूरी करें, सबको समान वेतन मिले, और अपने खाली समय में सब प्रेस का काम करें। अपने इस विचार की अपने साथियों के साथ चर्चा करने के बाद, जिस पर सब सहमत थे, 'इंडियन ओपीनियन' को डरबन से चौदह मील दूर फोनिक्स ले जाया गया। इस प्रकार 1904 में फोनिक्स की बस्ती की स्थापना हुई। यह एक ऐसे लोगों का सुदृढ़ परिवार बन गया, जो कि गांधीजी के मार्गदर्शन में अपना जीवन जीने के लिए प्रतिबद्ध था।

उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि फोनिक्स फार्म के सदस्यों, विशेषकर बच्चों की शिक्षा की आवश्यकता के प्रति वे जागरूक थे।

''जैसे–जैसे फार्म बढ़ा, वहां के लड़के, लड़कियों की शिक्षा के लिए प्रावधान करने की आवश्यकता अनुभव की गई। इनमें हिन्दू, मुसलमान, पारसी व ईसाई लड़के थे व कुछ हिन्दू लड़कियां थीं। मैंने इसके लिए अलग से कोई शिक्षक नियुक्त करने की आवश्यकता नहीं समझी। यह संभव भी नहीं था, क्योंकि योग्य भारतीय शिक्षक बहुत कम उपलब्ध थे, और जो थे उनमें से कोई जोहन्सबर्ग से 21 मील दूर कम वेतन पर आने के लिए तैयार नहीं होता... मेरा वर्तमान शिक्षा पद्धति में विश्वास नहीं था, और मेरा मन था प्रयोग व अनुभवों के आधार पर एक सही पद्धति खोजने का।''

गांधीजी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है–

''जब मैं जनवरी 1897 में डरबन पहुंचा, मेरे साथ तीन बच्चे थे। मेरी बहन का 10 वर्ष का लड़का, व मेरे खुद के 9 व 6 वर्ष के लड़के। इनको मैं कहां पढ़ाता? मैं उन्हें यूरोपियन बच्चों के स्कूल में भेज सकता था। परन्तु यह एक मेहरबानी व अपवाद होता। क्योंकि दूसरे किसी भारतीय बच्चे को इसकी इजाजत नहीं मिलती। क्योंकि ये स्कूल ईसाई मिशन द्वारा स्थापित किए गए थे। परन्तु मैं अपने बच्चों को वहां नहीं भेजना चाहता था क्योंकि मुझें इन स्कूलों में दी जा रही शिक्षा पसन्द नहीं थी। वहां शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होता या शायद अशुद्ध तमिल या हिन्दी होता, यह भी बिना अधिक दिक्कत के संभव हो सकता था। पर शायद मैं इन व अन्य कमियों को सहन नहीं कर सकता। मैं स्वयं उन्हें पढ़ाने का प्रयास कर रहा था, पर यह बहुत ही अनियमित था और मुझे कोई अच्छा गुजराती अध्यापक मिल नहीं रहा था... मैं किंकर्तव्यमूढ़ हो गया...''

गांधीजी की यह जद्दोजिहद चलती रही। एक तरफ तो उन्होंने वर्तमान शिक्षा पद्धति को पूर्णतः नकार दिया था और दूसरी ओर उनके पास इसके स्थान पर दूसरा कोई विकल्प नहीं था। उनको अपने बढे हुए परिवार के बच्चों को पढ़ाने का कोई तरीका नजर नहीं आ रहा था। पर, वे इस बात को लेकर पूर्णतः आश्वस्त थे कि वह शिक्षा अच्छी होती है जो व्यक्ति में आत्मसम्मान विकसित करे व कुछ मूल्यों का विकास करे। उन्होंने लिखा–

''मैं यदि आत्मसम्मान की ओर अनदेखी कर देता, और अपने बच्चों को वह शिक्षा देकर संतुष्ट हो जाता, जो दूसरे बच्चों को उपलब्ध नहीं थी, तो मैं उनको स्वतंत्रता एवं आत्मसम्मान के पाठ की कीमत पर साहित्यिक प्रशिक्षण दे देता और जब स्वतंत्रता और सीखने में से एक चुनना हो, तो कौन नहीं कहेगा कि पहले को दूसरे की अपेक्षा चुनना हजार गुना बेहतर होगा।'' अपनी पत्रिका ठीक से जम जाने के बाद वे भारतीय बच्चों के लिए एक स्कूल खोलना चाहते थे। उन्होंने 13 जनवरी 1905 को प्रोफेसर गोरवले को एक पत्र लिखा मदद के लिए। उनमें से कुछ वाक्य निम्नलिखित हैं–

''मेरी आमदनी यदि जारी रही तो मेरा इरादा एक स्कूल खोलने का है, जो कि दक्षिण अफ्रीका के किसी स्कूल से कम नहीं होगा। क्योंकि जो बच्चे इसमें पढ़ना चाहते हैं, वे यहां के छात्रावास में इसी परिसर में रहेंगे। इसके लिए भी स्वयं सेवी कार्यकर्ताओं की आवश्यकता होगी। यहां के एक–दो अंग्रेज पुरुषों या महिलाओं को इस कार्य के लिए अपना पूरा जीवन समर्पित करने के लिए तैयार किया जा सकता है, पर भारतीय शिक्षक भी अत्यंत आवश्यक होंगे। क्या आप कुछ स्नातकों को इस काम के लिए प्रोत्साहित कर सकेंगे, जिनमें पढ़ाने का रूझान हो, जो चरित्रवान हों और केवल साधारण जीवनयापन के साथ काम करने को तैयार हों। जो यहां आएं, वे पूर्णतया परखे हुए प्रथम दर्जे के व्यक्ति हों। मुझे दो या तीन की आवश्यकता है पर अधिक हों, तो उन्हें भी यहां काम में लगाया जा सकता है। जब स्कूल ठीक से चल पड़े तो एक आरोग्य निवास भी प्रारम्भ करने की मंशा है, जहां स्वच्छता के वातावरण में खुली हवा में उपचार हो सके।''

उस स्कूल में अन्ततोगत्वा 50 बच्चे हो गए। वे प्रयोग व अनुभवों के आधार पर एक सच्ची शिक्षा व्यवस्था खोजने के लिए संकल्पबद्ध थे। उन्हें यह खोजने में कुछ समय लगा, खासकर ऐसी शिक्षा व्यवस्था, जो भारत जैसे बड़े देश में बड़े पैमाने पर लागू की जा सके। क्योंकि उन्हें ज्ञान था कि उनका घर भारत है दक्षिण अफ्रीका नहीं। गांधीजी भारत लौटे।

गांधीजी ने आखिर यह सोचा कि अब उनके घर लौटने का समय आ गया है। वे कस्तूरबा के साथ 9 जनवरी 1915 को मुम्बई पहुंचे।

गांधीजी बुद्धिमान व्यक्ति थे, अतः उन्होंने तय किया कि उन्हें सीधे राजनीति में नहीं उतरना चाहिए। न ही यहां की परिस्थिति पर कोई फैसला सुनाना चाहिए। उन्होंने एक साल पूरे देश में घूमने, यहां के लोगों के जीवन को देखने व उनकी भावनाओं को समझने में बिताया। वे चाहते थे कि उन्हें शहरों व गांवों में सामान्य आदमी, जिन हालात में रहते हैं, उसकी प्रत्यक्ष जानकारी मिले। उन्हें गोपाल कृष्ण गोखले ने भी यही राय दी थी, जो कि उनके राजनीतिक गुरु समान थे। पर, सही तरीके की शिक्षा पद्धति की खोज करना उनकी सबसे पहली चिंता थी।

दो वर्षों के भीतर ही गांधीजी को तीन प्रमुख सत्याग्रह आन्दोलन प्रारम्भ करने पड़े– कपड़ा मिलों के मजदूरों की हड़ताल से संबंधित अहमदाबाद सत्याग्रह, किसानों द्वारा भूमि कर देने संबंधी खेड़ा सत्याग्रह व ब्रिटिश बागान मालिकों द्वारा नील की खेती करने वाले किसानों के शोषण के खिलाफ, चंपारन सत्याग्रह। चंपारन सत्याग्रह भारत में गांधीजी का प्रथम अहिंसक आंदोलन था। यह सत्याग्रह गोरे बागान मालिकों द्वारा असहाय किसानों के शोषण के खिलाफ संघर्ष में अहिंसक तरीकों की पहली विजय थी। हालांकि जब सत्याग्रह चल रहा था, उसी समय वे चंपारन जिले के गरीबों की हालात सुधार करने के बारे में सोच रहे थे।

'चंपारन के सत्याग्रह' के बारे में राजेन्द्र प्रसाद ने लिखा था– ''वे (गांधीजी) पूरी तरह से जानते थे कि किसी भी बाहरी अभिकरण के लिए उनके हालात सुधारना असंभव था, जब तक की उनकी मानसिक व नैतिक हालात में सुधार न हो। यह बात पूरे भारत के लिए लागू होती है, पर इसे चंपारन में बिना किसी विरोध के सिद्ध किया जा सकता था।... अतः महात्माजी ने यह तय किया कि उनमें शिक्षा का प्रसार करना उतना ही आवश्यक है, जितना उनकी परेशानियों को दूर करना। जांच समिति के काम शुरू करने से पहले ही महात्माजी ने अपने कुछ मित्रों को लिखा कि उन्हें कुछ स्वयं सेवकों की आवश्यकता है, सामाजिक कार्य के लिए।''

उन्हें कुछ पढ़े लिखे लोग उनके द्वारा प्रारम्भ किए गए स्कूलों में काम करने के लिए मिल भी गए। दुर्भाग्य से बिहार के बहुत कम पढ़े लिखे लोग इसमें शामिल हुए। अपनी योजना का वर्णन करते हुए उन्होंने एक सरकारी अधिकारी को लिखा– ''मैं जो स्कूल खोल रहा हूं, उसमें 12 वर्ष से कम बच्चों को प्रवेश दिया जाएगा। आशय यह है कि जितने भी बच्चे मिल सकें, उनको सर्वांगीण शिक्षा दी जाए, अर्थात् हिन्दी या उर्दू का अच्छा ज्ञान व उसी माध्यम से गणित, इतिहास व भूगोल की प्राथमिक जानकारी, विज्ञान के सामान्य सिद्धान्तों की जानकारी व साधारण उद्योग का प्रशिक्षण दिया जाए। अभी कोई बना बनाया पाठ्यक्रम तैयार नहीं किया गया है, क्योंकि मैं लीक से हटकर चल रहा हूं। मैं वर्तमान शिक्षा की ओर भय व अविश्वास से देखता हूं। बच्चों की मानसिक व नैतिक शक्ति का विकास करने की बजाय यह उन्हें कुंठित करती है।''

इस क्षेत्र में पांच स्कूल स्थापित हो गए। उनके कुछ निकटतम साथी उनकी योजना को साकार करने में उनके साथ थे। इसके बारे में उन्होंने लिखा–

''मैं वर्तमान शिक्षा पद्धति के दोषों से बचने का प्रयास करूंगा। प्रमुख बात जो की जाएगी, वह है बच्चों को चरित्रवान व संस्कारवान महिला पुरुषों के सम्पर्क में लाना, मेरी दृष्टि में यह सही शिक्षा है, और ज्ञान का सीखना इसके लिए एक साधन मात्र है।''

चंपारन सत्याग्रह सफल रहा, अपनी आत्मकथा में गांधीजी लिखते हैं–

'आज तक जो रैयत दबाई गई थी उसमें अब कुछ आत्मबल आ गया, और यह अंधविश्वास ध्वस्त हो गया कि नील के दाग कभी धोए नहीं जा सकते।... मेरी इच्छा यह रचनात्मक कार्य कुछ और दिन करने की थी, कुछ और स्कूल खोलने की व गांवों में और प्रभावशाली ढंग से प्रवेश करने की इच्छा थी। इसके लिए जमीन तो तैयार हो गई थी, पर ईश्वर को मेरी योजनापूर्ण करना मंजूर नहीं था, जैसा कि हमेशा होता है। भाग्य ने कुछ और तय किया और मुझे अन्य जगह काम में लगा दिया।'

ये स्कूल कुछ दिन चले और फिर बंद हो गए क्योंकि कार्यकर्ता नहीं थे और ऐसे पथ प्रदर्शक काम के लिए आवश्यक दूरदृष्टि नहीं थी।

सत्याग्रह आश्रम, साबरमती

दक्षिण अफ्रीका छोड़ते समय गांधीजी के मन में एक प्रश्न था, भारत में फीनिक्स परिवार को कहां बसाया जाए? सी.एफ.एन्ड्रूज के सुझाव पर पूरा समूह शांतिनिकेतन गया, उस आश्रम में जिसे कवि रविंद्रनाथ टैगोर ने बंगाल में स्थापित किया था। टैगोर का एक समग्र शिक्षा का कार्यक्रम था, जो कि संक्षेप में कहा जाय तो, एक विशिष्ठ दर्शन पर आधारित था व सृजनात्मक प्रवृत्तियों के इर्द–गिर्द बुना गया था। वे अपने इस सोच में दृढ़ थे कि शिक्षा का माध्यम सभी स्तरों पर मातृभाषा होना चाहिए। दूसरा, प्रकृति सीखने का सबसे समृद्ध केन्द्र है। और तीसरा, शिक्षा की प्रक्रिया में सृजनात्मक प्रवृत्तियों की केंद्रीय भूमिका होनी चाहिए। गांधीजी को टैगोर की शिक्षा पद्धति बहुत पसंद आई और उन्होंने इसका सम्मान किया। परन्तु यह मानना होगा कि उनका लक्ष्य कुछ और था, खासकर तात्कालिक लक्ष्य।

फीनिक्स की बस्ती शांतिनिकेतन में स्थानांतरित हो गई। कुछ दिनों बाद गांधीजी भी इसमें शामिल हो गए। उन्होंने कविवर के साथ मिलकर कई प्रयोग किए, खासकर जीवन की शिक्षा की शैक्षिक संस्थाओं का विकास किस तरह से होना चाहिए। निःसंदेह उनको शांतिनिकेतन में उनके व उनके साथियों के अनुभव से कुछ नए विचार मिले होंगे। अब उन प्रयोगों में से कुछ शेष नहीं है, सिवाय उसके कि वहां गांधीजी के ठहरने व स्वयं सेवा करने के उपलक्ष्य में वहां एक दिन मनाया जाता है।

गांधीजी के लिए अपने प्रयोग करने के लिए व अपना घर बसाने के लिए शांतिनिकेतन जगह नहीं थी। उनकी आवश्यकता थी, उन्होंने भारत के भविष्य की जो तस्वीर बनाई थी, उससे संबंधित प्रयोग करने की। यह परिवार गुजरात गया, पहले कोचराब और आखिर में साबरमती में, जो कि अहमदाबाद के बिलकुल बाहर स्थित है।

राष्ट्रीय राजनीति के अतिरिक्त एक और बात थी, जिसमें उनका दिमाग हमेशा लगा रहता था। और वह थी भारत के जनसामान्य के लिए शिक्षा। वे जानते थे कि ब्रिटिश काल से पूर्व भारत में शिक्षा का क्या अर्थ था। उन्होंने 23 दिसम्बर 1916 को इलाहाबाद में एक गोष्ठी में भाषण दिया, जिसे 'द लीडर' में प्रकाशित किया गया (27–12–1916) उसमें से कुछ वाक्य निम्नलिखित हैं–

'गांधीजी ने फिर प्राचीन शिक्षा पद्धति का वर्णन किया.... गांव के शिक्षक द्वारा जो प्राथमिक शिक्षा दी जाती थी, उसमें विद्यार्थियों को वह सब सिखाया जाता था, जो उनके व्यवसाय के लिए आवश्यक था. ..। जो उच्च शिक्षा के लिए जाते थे, उन्हें सम्पत्ति का विज्ञान (अर्थशास्त्र), नीतिशास्त्र व धर्मशास्त्र का ज्ञान दिया जाता था। प्राचीन काल में शिक्षा के लिए कोई पाबन्दियां नहीं थीं। ऐसी शिक्षा पद्धति के कारण ही भारत की सभ्यता कई विपत्तियों के बावजूद हजारों

वर्षों तक जीवित रही। निःसंदेह भारत में नई सभ्यता की लहर भी आ रही थी। पर उन्हें विश्वास था कि यह क्षणिक है और अन्ततोगत्वा भारतीय सभ्यता पुनर्जीवित होगी।'

गांधीजी अपनी आदर्श शिक्षा पद्धति के निकट पहुंच रहे थे। पर सच्ची आदर्श शिक्षा पद्धति की खोज से पूर्व उन्हें और कई प्रयोग करने थे।

राष्ट्रीय शिक्षा

साबरमती आश्रम ठीक से व्यवस्थित हो जाने के बाद गांधीजी ने एक राष्ट्रीय विद्यालय की योजना बनाना प्रारम्भ किया। इसके परिचय पत्र में इसके मूलभूत सिद्धान्तों का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा–

''यह शिक्षा शारीरिक, बौद्धिक व धार्मिक होगी। शारीरिक शिक्षा के अंतर्गत कृषि, हाथ की बुनाई, लकड़ी व लोहे के काम के लिए औजारों को काम में लेना होगा.... इसके अतिरिक्त उन्हें व्यायाम कराया जाएगा.... इस ड्रिल के अंतर्गत उन्हें टुकड़ियों में कदम मिलाकर चलाना (मार्च पास्ट) तथा किसी दुर्घटना के समय जैसे आग लगना, प्रत्येक व्यक्ति को कुशलता व शांतिपूर्णक कार्य करने का प्रशिक्षण दिया जाएगा.... उन्हें स्वस्थ बनाए रखने व सामान्य बीमारियों के लिए घरेलू इलाज का प्रशिक्षण दिया जाएगा और इसके लिए आवश्यक शरीर विज्ञान व वनस्पति विज्ञान का भी ज्ञान दिया जाएगा.... बौद्धिक प्रशिक्षण हेतु वे गुजराती, मराठी, हिन्दी व संस्कृत अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ेंगे.... प्रथम तीन वर्षों में अंग्रेजी का अध्यापन बिल्कुल नहीं होगा।''

उच्चतम स्तर तक शिक्षा का माध्यम गुजराती रखा गया (स्थानीय लोगों की मातृभाषा)। पाठयक्रम में सामान्य विषय सम्मिलित किए गए थे जैसे– गणित, बही–खाता हिसाब रखना, इतिहास, भूगोल, रसायन विज्ञान, व खगोल शास्त्र, धार्मिक शिक्षा में सामान्य नैतिकता के सिद्धान्त सिखाए जाते थे। इस शिक्षा का उद्देश्य यह था कि कुछ वर्षों में विद्यार्थी में एक अच्छे जानकार स्नातक के बराबर क्षमता आ जाए।

उनके दिमाग में इस आदर्श शिक्षा पद्धति के उद्देश्य स्पष्ट थे, पर अभी वे इस पद्धति की कोई ठोस योजना देने की स्थिति में नहीं थे, जो कि अपनी परिभाषा में ब्रिटिश शिक्षा पद्धति से भिन्न हो। वे इस बारे में स्पष्ट थे कि हर स्तर पर शिक्षा मातृभाषा में दी जाए। उन्होंने 1917 में द्वितीय गुजरात शैक्षिक सम्मेलन में कहा–

''सबको यह स्पष्ट होना चाहिए कि सर्व प्रथम बात जो करनी है, वह यह कि हम इस निश्चित निर्णय पर पहुंचे कि शिक्षा का माध्यम क्या हो। जब तक यह नहीं होता बाकी सब प्रयास मुझे लगता है, बेमाने होंगे।''

उन्होंने पूरे देश की एक भाषा हो इस पर भी बहुत जोर दिया। उन्होंने राष्ट्र भाषा की पांच आवश्यकताएं बताई–

(क) सरकारी अफसरों को सीखने में आसान हो,

(ख) देश के सब हिस्सों के मध्य धार्मिक, आर्थिक व राजनैतिक सम्पर्क का साधन बनने योग्य हो,

(ग) काफी बड़ी संख्या के भारतीयों की बोलचाल की भाषा हो,

(घ) हर एक के लिए सीखना आसान हो,

(ङ) तात्कालिक या क्षणिक आधारों को ध्यान में रखे बिना उसका चयन किया जाए।

यह स्पष्ट था कि अंग्रेजी उपरोक्त सभी कसौटियों को पूरा नहीं करती। गांधी ने सोचा हिन्दी व

आखिरकार हिन्दुस्तानी ही ऐसी भाषा है, जो उपरोक्त सभी शर्तों को पूरा करती है।

गांधी का मानना था कि शिक्षा का प्रमुख कार्य चरित्र निर्माण है। तीसरी बात, जिस पर उनका आग्रह था वह थी संगीत और चौथी बात थी, शारीरिक शिक्षा। उन्होंने स्त्री शिक्षा की पुरजोर पैरवी की।

हमें लगता है हमारा सम्पूर्ण जीवन परीक्षाओं में सफलता प्राप्त करने पर निर्भर करता है। गांधीजी ने कहा–

''भारत को परीक्षाओं के बारे में कभी पता नहीं था। यह पद्धति हाल ही शुरू की गई पद्धति है.... इस पद्धति के बहुत दुरुपयोग हुए हैं, हर विषय परीक्षा को ध्यान में रखकर पढ़ाया जाता है। और विद्यार्थियों के दिमाग में यह बात पूरी तरह बैठा दी जाती है कि केवल परीक्षा उत्तीर्ण करना ही आवश्यक है।'' उनकी योजना में कहा गया–

'इस विचार को ध्यान में रखते हुए कि परीक्षाएं बिलकुल अवांछनीय है, इस संस्था में विद्यार्थियों की जांच दो बिन्दु को ध्यान में रखते हुए की जाएगी– क्या शिक्षक ने सही प्रयास किए हैं और क्या विद्यार्थियों की समझ में आया है। विद्यार्थी परीक्षा के भय से मुक्त हो गए।'

राष्ट्रीय विश्व विद्यालय–विद्यापीठ

प्रथम विश्व युद्ध के बाद भारत को ब्रिटिश लोगों के हृदय परिवर्तन की आशा थी। परन्तु इसे मिला रौलेट एक्ट। सारे लोगों ने इसका विरोध किया। अप्रैल 1919 में जलियांवाला बाग में एक हजार से अधिक लोगों का फौज द्वारा नरसंहार किया गया। इससे भारत के आत्मसम्मान को चोट लगी और वह बाहरी सत्ता के विरोध में बगावत करने खड़ा हुआ। गांधीजी ने कहा जलियांवाला बाग तो केवल शुरुआत है। हमें एक हजार ही नहीं, कई हजार हत्याओं का धैर्य से सामना करना पड़ेगा। इससे पहले कि हमें वह दर्जा मिले, जिसे दुनिया की कोई ताकत छीन न सके। आशा है, हम सभी संबंधित व्यक्तियों को धैर्य छोड़ने की बजाय उसे बनाए रखना चाहिए और फांसी को जीवन की एक सामान्य घटना समझना चाहिए।

उन्होंने 1 अगस्त 1920 को वाईसराय को लिखा – ''मैं उस सरकार के प्रति आदर और प्यार कायम नहीं रख सकता, जो अपनी अनैतिकता का बचाव करने के लिए एक के बाद एक गलत काम कर रही है।'' गांधीजी व कांग्रेस ने ब्रिटिशर्स के साथ पूर्ण असहयोग प्रारंभ कर दिया। और आह्वान में सभी विधायी संस्थाओं, सरकारी स्कूलों तथा न्यायालयों का बहिष्कार करने को कहा गया। 27–29 अगस्त को हुए गुजरात राजनैतिक सम्मेलन में सभी अलंकरण व पदक प्राप्त व्यक्तियों को इन्हें लौटाने का आह्वान किया गया। वकीलों को याचिकाएं, निजी स्तर पर निपटाकर न्यायालयों का बहिष्कार करने को कहा गया।

आह्वान था कि अभिभावकों को अपने बच्चों को ऐसे सभी स्कूलों से निकाल लेना चाहिए जिनका किसी भी प्रकार से सरकार से संबंध है। कॉलेज के विद्यार्थियों को स्वतः कॉलेज छोड़ देने चाहिए। मतदाताओं को किसी व्यक्ति को मत नहीं देना चाहिए, जो काऊंसिल के लिए खड़ा हो। उम्मीदवारों को अपनी उम्मीदवारी वापस ले लेनी चाहिए। प्रत्येक स्त्री–पुरुष को स्वदेशी के नियम की पालना करनी चाहिए और सूत कातना चाहिए।

हालांकि यह एक पूर्णतया राजनैतिक अभियान था। पर इसका देश के शैक्षिक परिदृश्य पर गहरा प्रभाव पड़ा। सरकार से संबंधित स्कूल व कॉलेजों का बहिष्कार करने का आह्वान देने का अर्थ था

कि इनके स्थान पर वैकल्पिक संस्थाओं की व्यवस्था की जाए। यह विद्यापीठों के स्थापना का प्रारम्भ था, जो कि– देश भर के राष्ट्रीय स्कूल व कॉलेज थे। गांधीजी ने नवम्बर में गुजरात के राष्ट्रीय विश्वविद्यालय– 'गूजरात विद्यापीठ' की स्थापना की। इस प्रकार की राष्ट्रीय संस्थाएं कलकत्ता, पटना, अलीगढ़, मुम्बई, बनारस व दिल्ली में भी स्थापित हुईं। जामिया मिलिया इस्लामिया राष्ट्रीय मुस्लिम विश्वविद्यालय, गांधीजी व मोहम्मद अली जिन्ना के संयुक्त प्रयासों से स्थापित हुआ। इन संस्थाओं का राजनैतिक चेतना जागृत करने में व शैक्षिक जागृति पैदा करने में महत्वपूर्ण योगदान रहा। इन शिक्षा के केन्द्रों की स्थापना, शिक्षा के प्रति एक नया नजरिया विकसित करने का एक कदम था। इनमें स्वतंत्रता की भावना विकसित की गई, जो एक स्वस्थ व्यक्तित्व के लिए आवश्यक है। दूसरा, इनमें स्वतंत्रता सैनानियों की एक फौज तैयार हुई, अगले 'मुक्ति संग्राम' के लिए। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह थी कि इनमें गांधीजी को अपनी शिक्षा पद्धति बुनियादी तालीम जो कि 1937 में प्रारंभ की गई, के ढांचागत पक्ष के संबंध में प्रयोग करने के केन्द्र उपलब्ध हुएं। इस समय तक गूजरात विद्यापीठ व जामिया मिलिया इस्लामिया ने अपनी ढांचागत व्यवस्थाएं पूर्ण रूप से विकसित कर ली थी। एक तरह से नई योजना को परीक्षण का अवसर मिला।

शेष अगले अंक में...

देवी प्रसाद : सन् 1944 से 1962 तक सेवाग्राम (वर्धा) में नई तालीम के शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालय में प्रशिक्षक रहे हैं। हिन्दी रूपान्तरण **– ए.बी. फाटक**, विद्या भवन सीनियर सैकण्डरी स्कूल रहे। शाह गोवर्द्धनलाल काबरा शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय जोधपुर में प्राचार्य रहे हैं। वर्तमान में विद्या भवन सोसायटी से जुड़े हैं।

विद्या भवन में नई तालीम की यात्रा

कालू राम शर्मा

विद्या भवन की संरचना में झांककर देखें, तो इसमें गांधी की विचारधारा और गांधी की नई तालीम की सुगंध आती है। विद्या भवन अपनी स्थापना के दौरान से ही गांधी के विचारों से ओतप्रोत रहा है। आजादी के पहले, औपनिवेशिक ताकतों के चलते विद्या भवन की स्थापना एक स्कूल के माध्यम से की गई, जहां लड़कियां और लड़के एक साथ अध्ययन कर सकें। देश में जहां एक ओर नई तालीम का ताना–बाना बुना जा रहा था उसी दौरान रामगिरि में एक स्कूल की स्थापना की गई। रामगिरि स्कूल में प्रारंभिक तौर पर बच्चों की संख्या सीमित रही मगर स्कूल ढांचागत सुविधाओं के मामले में समृद्ध था और आज भी है। विद्या भवन बुनियादी स्कूल, उदयपुर–माउंटआबू सड़क पर उदयपुर शहर से लगभग तीन किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। स्कूल को अगर देखें तो यहां खेती–किसानी के लिए काफी जमीन निर्धारित की गई। स्कूल में लगे शिलालेख से ज्ञात होता है कि इसकी नींव मेवाड़ प्रेसिडेंसी के अध्यक्ष राघवाचार्य ने रखी और उद्घाटन नई तालीम की योजना रचने वाले गांधी के सहयोगी श्री जाकिर हुसैन ने 23 अप्रैल 1941 को किया। उल्लेखनीय है कि जाकिर हुसैन ने वर्धा स्कीम की योजना को अमलीजामा दिया था। विद्या भवन बुनियादी स्कूल रामगिरि में यह वह अवसर था जब बुनियादी शिक्षा को प्रायोगिक तौर पर समझने की कोशिश की जा रही थी। स्व. श्री दयालचंद्र सोनी के शब्दों में "हम नई तालीम को अपने स्कूल में श्रद्धापूर्वक अपनाकर देखेंगे" यह बात सही साबित हुई। इस प्रकार नई तालीम को आधार बनाकर बच्चों को शिक्षा देते हुए पूरे देश के नक्शे पर विद्या भवन एक सशक्त संस्थान बनकर उभरा। जवाहरलाल नेहरू के कार्यकाल में शिक्षा मंत्री रहे कालू लाल श्रीमाली ने रूरल इंस्टीट्यूट की स्थापना इस मकसद से की कि इस स्कूल में पढ़कर उच्च शिक्षा हासिल करने वाले छात्र यहां बुनियादी शिक्षा के नज़रिए से शिक्षा प्राप्त कर समाज में योगदान कर सकें। इसी लिहाज से रूरल इंस्टीट्यूट में पॉलिटेक्निक कॉलेज की भी नींव रखी। इस प्रकार रामगिरि समेत आसपास के स्कूलों के छात्रों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने का एक सुलभ मार्ग प्रशस्त हुआ।

आज़ादी के बाद, धीरे–धीरे रामगिरि स्कूल में नई तालीम की पकड़ ढीली पड़ती गई मगर नई तालीम की आत्मा जरूर मौजूद रही। नब्बे के दशक के उत्तरार्ध में विद्या भवन ने नई तालीम के महत्व और प्रासंगिकता को समझते हुए इसे वर्तमान संदर्भ में पुनर्परिभाषित करने का प्रयास किया। इस प्रयास में यह समझने की कोशिश की कि आखिर वे क्या वजहें हैं, जो नई तालीम को व्यापक करने में बाधक हैं। साथ ही एक संस्थान के रूप में या कहें कि एक राज्य के रूप में अर्थपूर्ण शिक्षा या कहें कि गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को अर्जित करने का रास्ता क्या हो। इस दौर में विद्या भवन अपनी संस्थाओं को शैक्षिक रूप से सशक्त करने के साथ–साथ देश के अन्य राज्यों में सर्व साधारण की शिक्षा में गुणात्मक सुधार को लेकर राज्य सरकारों के साथ साझेदारी के रूप में हस्तक्षेप

करने के प्रयास में जुटा हुआ था। विभिन्न राज्यों की एससीईआरटी, डायट्स व स्कूली शिक्षकों के साथ पुस्तक लेखन एवं शिक्षक प्रशिक्षण के कार्य, प्रमुख रूप से गिनाए जा सकते हैं। चाहे अपनी संस्थाओं की प्रदेश स्तर पर भागीदारी की बात हो इसमें हमने बुनियादी शिक्षा के तत्वों को समझते हुए, उन्हें आज के संदर्भ में व्यापक करने की पेशकश की। इस लेख में आजादी के बाद नवउदारवादी और भूमंडलीकरण के चलते हम बुनियादी शिक्षा को किस तरह से देखते हैं, इसकी एक झलक देने का प्रयास है।

जब हम अर्थपूर्ण शिक्षा की बात करते हैं तो हमारे सामने बुनियादी शिक्षा का दर्शन मजबूत रूप में सामने आता है। किसी भी समाज को अपने संदर्भ में पैर जमाने व आगे बढ़ने के लिए इसके सिद्धान्त उपयोगी हैं। फिर भी आज़ादी के बाद से और बहुत सारे लोगों के प्रयासों के बावजूद भी इसको उस स्वरूप में नहीं ला पाए जिस स्वरूप में यह सभी स्कूलों के लिए संभव बन सके। अब तक बुनियादी शिक्षा को अपनाने को लेकर देश भर में किस–किस प्रकार से कार्य किया गया? वे क्या कारण हैं कि बुनियादी शिक्षा एक ठोस स्वरूप नहीं ले पाई और मुख्यधारा की शिक्षा अथवा उसका मान्य हिस्सा नहीं बन पाई? इन सब सवालों पर विद्या भवन के प्रयास ने शिक्षा से जुड़े लोगों के बीच एक बहस को शुरू किया है। इन सवालों पर विमर्श की प्रक्रिया से बुनियादी शिक्षा की खूबियों और सीमाओं को पहचानने का अवसर मिला है। साथ ही बुनियादी शिक्षा को आज के संदर्भ में पुनर्परिभाषीकरण करने में काफी हद तक आगे बढ़ सके हैं।

बुनियादी शिक्षा को आज के संदर्भ में अपनाते हुए इसके समस्त पहलुओं को गंभीरतापूर्वक समझने का प्रयास करने की आवश्यकता महसूस की गई। कुछ प्रश्न अतिआवश्यक हैं, शिक्षा की आवश्यकता क्यों है? शिक्षा की समाज में क्या भूमिका होनी चाहिए, शिक्षा क्या है, इसकी प्रक्रिया क्या हो? इन सभी प्रश्नों को बुनियादी शिक्षा के संदर्भ में देखने से कई महत्वपूर्ण सिद्धान्त मिलते हैं। विद्या भवन के प्रयास ने इन मसलों को बुनियादी शिक्षा के दायरे में परियोजना के प्रथम चरण से ही खंगालने का प्रयास किया है। जब हम बालकेंद्रित शिक्षा की बात करते हैं, तो उसके कई निहितार्थ हैं। शिक्षा को बच्चों के संदर्भ व अनुभव में रचा जाना चाहिए, उन्हें ठोस संदर्भों व एक स्तर पर मूर्त चीजों के साथ अंतःक्रिया करने के अवसर दिए जाएं, सीखने की आजादी दी जाए व यह समझ हो कि बच्चा स्कूल आता है, तो वह बहुत कुछ जानता है। इन सब मसलों पर विद्या भवन की सभी सम्बन्धित संस्थाओं को जोड़कर हम एक सार्थक संवाद स्थापित कर आगे बढ़ पाए हैं।

बुनियादी शिक्षा में कार्य को स्कूल में केंद्रीय स्थान क्यों दिया गया, इस बात का निर्माणवादी दृष्टिकोण से भी संदर्भ है। निर्माणवादी दायरे में बच्चा खुद ज्ञान का निर्माण करता है। उसे अपने विचारों पर चिंतन–मनन करने, उनके विश्लेषण, उपयोगिता की परख करने की आवश्यकता है। खोजबीन व मनन साथ–साथ चलते हैं और ठोस अनुभवों की सबसे अच्छी बुनियाद तब पड़ती है, जब बच्चे कुछ बना रहे हों व कर रहे हों। इसके लिए बच्चों को कुछ कार्य करने की, सृजन करने की व बनाने की जरूरत है। यह बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्त के अनुसार है जिसमें बच्चे को खुद अपने हाथों से कार्य करना होगा। यह प्रक्रिया बच्चे के शरीर की विभिन्न इंद्रियों को भी सक्रिय रहने के अवसर देती है। बच्चा अपने स्तर पर कुछ रचे और रचने के दौरान वह जिन प्रक्रियाओं से गुजरे, उनमें से ज्ञान अर्जन करे। यदि बच्चे को कुछ रचने का अवसर दिया जाता है तो रटंत शिक्षा से छुट्टी पाई जा सकती है। यानी रचनात्मक परिप्रेक्ष्य में सीखना बच्चे के लिए अपने ज्ञान के निर्माण की एक प्रक्रिया है। पूछताछ, अन्वेषण, प्रश्न पूछना,

वाद–विवाद, व्यावहारिक प्रयोग व ऐसा चिंतन जिससे सिद्धांत बन सके और विचार व स्थितियों की रचना हो सके, ये सभी बच्चों की सक्रिय व्यस्तता को सुनिश्चित करते हैं। समूह में काम करने में व चीजें बनाने में इस सबकी जरूरत है। अच्छी शिक्षा को सुनिश्चित करना है, तो बच्चों को ऐसे अवसर प्रदान किए जाएं जिनमें वह प्रश्न पूछकर, चर्चा एवं चिंतन कर अवधारणाओं को आत्मसात कर सकें।

सीखने की प्रक्रिया का एक और अभिन्न अंग है आसपास के वातावरण, प्रकृति, चीजों व लोगों से कार्य व भाषा दोनों के माध्यम से अंतःक्रिया करना। बच्चे का समुदाय और उसका स्थानीय वातावरण सीखने में अहम भूमिका अदा करता है। परिवेश के साथ अंतःक्रिया करके ही बच्चा ज्ञान सृजित करता है और जीवन में सार्थकता पाता है। हालांकि पाठ्यपुस्तकों की संकल्पना और शिक्षा–शास्त्रीय व्यवहार में हमेशा से ही इस समझ की अवहेलना की जाती रही है। बुनियादी शिक्षा को प्रासंगिक बनाने का अर्थ यही है कि सीखने को बच्चे के परिवेश से जोड़ा जाए। स्कूल तथा बच्चे के प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण व स्कूल के बीच की सीमा रेखा को कमजोर किया जाए। यह केवल इसलिए नहीं कि अपने परिवेश में बच्चों का अपना अनुभव ज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश का बेहतर माध्यम होता है बल्कि इसीलिए भी कि ज्ञान का मतलब ही दुनिया से जुड़ना है।

बुनियादी शिक्षा के मूल में जो तथ्य है वह यह कि शिक्षा प्राप्त करते हुए बच्चे के हाथ, दिमाग एवं दिल तीनों की भागीदारी हो। अतः बच्चे को हाथों से कार्य करने के अवसर मिले, तो हस्तकौशल का विकास होगा और किसी चीज का सृजन कर सकेगा। इसी प्रकार से बच्चे के पास सोचने के लिए दिमाग है। जब बच्चा हाथों से कार्य करेगा तो उसके बारे में सोचने की प्रक्रिया निरंतर चलती रहेगी। इसी प्रकार से जब वह अपनी दिलचस्पी का कार्य करेगा तो उसका भावनात्मक जुड़ाव होगा। इस तरह से बुनियादी शिक्षा बच्चे के दिल, दिमाग और हाथों इन तीनों के उपयोग और उनके विकास की पहल करती है। जाहिर है कि बच्चा हाथों से कार्य करेगा तो उसका शारीरिक विकास भी होगा।

हम बुनियादी शिक्षा के इस एक पहलू को पकड़कर बाकी के आयामों को अपनाने की दिशा में आगे बढ़ने में सफल हुए हैं। जब बच्चे को हाथों से कोई चीज का सृजन करना है तो उसको कई प्रक्रियाओं से गुजरना होगा। बच्चा कार्य करते हुए अपने परिवेश, समाज से अंतःक्रिया करता है। जब वह कार्य करता है तो समूह भावना का विकास भी होता है।

इस प्रकार से बच्चा शिक्षा प्राप्त करते हुए, नैतिक मूल्यों की सीख भी सही अर्थों में अपने आचरण में उतारता है। जब बच्चा कार्य करता है तो उसके मन में शांति के भाव पैदा होते हैं। अहिंसा से जुड़े हुए भाव होते हैं। मेहनत एक नैतिक ताकत है। जब बच्चा शारीरिक श्रम और कार्य करता है तो उसमें समस्याओं से जूझने और उनको हल करने की क्षमता का विकास भी होता है।

बुनियादी शिक्षा परियोजना के चरण

विद्या भवन ने बुनियादी शिक्षा के मूल सिद्धान्तों को आज के संदर्भ में समझने, प्रयोग करने और पुनः अपनाने की दिशा में इस परियोजना के तीन चरणों में काम व प्रयास किया गया है। हमारा यह विश्वास है कि सार्थक शिक्षा की ओर बढ़ने की राह बुनियादी शिक्षा से हमें मिल सकती है। किन्तु इसका जमीनी स्वरूप क्या होगा, कैसे बनेगा और यह ज्यादा व्यापक स्तर पर कैसे जाएगा, इस पर लगातार विचार हो रहा है व नये रास्तों की तलाश की जा रही है।

प्रथम चरण

प्रथम चरण में प्रमुख रूप से इस सवाल पर समझ

बनाने की बात थी कि शिक्षा क्या है व इसमें बुनियादी शिक्षा से क्या दिशा मिलती है? आजादी के बाद से ही शिक्षा के सवाल पर काफी चर्चाएं होती रही हैं व बुनियादी शिक्षा को दायरे में रखकर सोचने से कई महत्वपूर्ण सिद्धान्त मिलते हैं।

जब बच्चा बुनियादी स्कूल से शिक्षा पाकर बाहर निकलेगा, तो उसमें विकास की एक समझ होगी। उसमें भागीदारी की भावना होगी। टीम भावना का विकास होगा, जिसमें श्रम के प्रति सम्मान भी समाया होगा। बच्चों में आत्मविश्वास का विकास होगा। हाथों से किए जाने वाले कामों के माध्यम से बच्चों में कौशलों का विकास करना और उत्पादक काम करना बुनियादी शिक्षा का अहम मकसद है। यह आज के सामाजिक संदर्भ में आवश्यक है।

विद्या भवन ने इस चरण में यह भी समझा कि उत्पादक कामों से शिक्षा का रिश्ता दूर होता जा रहा है। और महज डिग्री लेने की ओर रुझान बढ़ता जा रहा है। एक आम स्कूल, बच्चों को सुनहरे अवसर उपलब्ध कराने में असमर्थ पाता है। बुनियादी शिक्षा के माध्यम से हम शिक्षा को अर्थपूर्ण शिक्षा के दायरे में लाना चाहते हैं। इसमें यह भी शामिल है कि समाज की स्कूल में भागीदारी बने।

बुनियादी स्कूल में शिक्षा के साथ–साथ हम कुछ उद्योगों के माध्यम से बच्चों को अर्थव्यवस्था आदि के बारे में समझ विकसित करना चाहते हैं। साथ ही इन उद्योगों के माध्यम से बच्चों में हुनर का विकास होगा, जिससे वे सक्षम बन सकेंगे।

दूसरा चरण

इस चरण में स्कूल के दायरे को अर्थपूर्ण शिक्षा के दायरे में व्यापक बनाना और शिक्षा को संस्कृति, समाज और समाज की सच्चाइयों से जोड़ना है।

स्कूली शिक्षा के संदर्भ में और भी संभावनाओं को तलाशना और उनको अपनाना इस चरण का लक्ष्य रहा है ताकि अर्थपूर्ण शिक्षा के लक्ष्यों को हासिल किया जा सके।

बुनियादी स्कूल रामगिरि को संदर्भ केंद्र के रूप मे विकसित करना ताकि आसपास के अन्य स्कूलों को बुनियादी शिक्षा को अपनाने के लिए प्रेरित किया जा सके और दूसरी ओर वैकल्पिक शिक्षा के इस अनुभव को व्यापक स्तर पर संवाद का एक जरिया बनाया जा सके।

स्कूल और समाज के रिश्ते को समझना और मजबूत बनाना इस चरण का मुख्य लक्ष्य था। बेशक, यह कार्य चुनौतीपूर्ण और कठिन है। स्कूल को समाज से परे रखकर शिक्षा की बात करना बेमानी लगता है। अतः समाज को सिखाने के बजाए समाज से हम क्या और कैसे सीखें, यह महत्वपूर्ण है। कोई भी स्कूली पाठ्यक्रम तब तक अधूरा है जब तक वह समाज से नहीं जुड़ता। इसके लिए बुनियादी स्कूल के बच्चे और शिक्षक समाज के साथ अंतःक्रिया कर सकें और पाठयक्रम को समाज के साथ जोड़ सकें, इस पर गहनता से कार्य किया गया। समाज में जाकर सीखने के लिए कुछ उपकरण बनाए गए। एक तो सर्वे करना, गांव–मोहल्लों में जाकर समस्याओं को समझने के लिए बातचीत करना, पुस्तकालय के माध्यम से संवाद करना, प्रमुख है।

हम बालकेंद्रित शिक्षा की बात तो करते हैं मगर उसका गुणगान करते हुए बच्चों पर ज्ञान व समझ को थोपा जाता है। बालकेंद्रित शिक्षा का एक प्रमुख पहलू है बच्चे क्या सीखना चाहते हैं। उनके सीखने के मसले क्या–क्या हैं। हालांकि समाज की बात जब करते हैं तो वह भी उन मसलों से जोड़ने की ही कवायद है जो उनके संदर्भ के हैं। इस पूरे मामले को लेकर विद्या भवन ने समझ बनाने की कोशिश की है।

इस बात को समझना कि शिक्षक के सान्निध्य में

बच्चे कैसे सीखते हैं। दरअसल, शिक्षा के सिद्धांतों को शिक्षक प्रशिक्षणों में पढ़ा तो जाता है मगर उन्हें कक्षा–कक्ष में कैसे अपनाया जाए यह खाई विकराल रूप प्राप्त कर चुकी है। इस खाई को पाटना बेहद जरूरी लगता है। इस कार्य के दौरान विद्या भवन ने शिक्षा के सिद्धांतों को व्यावहारिक रूप देने की कोशिश की।

तीसरा चरण

इस परियोजना के पिछले दो चरणों में बुनियादी शिक्षा के संदर्भ में जो भी अनुभव व समझ प्राप्त हुई है उसका लोकव्यापीकरण करना इस चरण का मुख्य लक्ष्य रहा है। इस चरण में राजस्थान राज्य की प्रशिक्षण संस्थाओं के साथ, अन्य स्कूलों में बुनियादी शिक्षा के फैलाव के लिए प्रयास किए गए।

विद्या भवन आईएएसई एवं पॉलिटेक्निक महाविद्यालय ने साथ मिलकर बुनियादी शिक्षा की गतिविधियों का राजस्थान राज्य के चुने हुए जिलों में फैलाव की दिशा में कार्य किया गया।

राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, एसआईईआरटी एवं डाइट्स के माध्यम से इस विचार के कुछ पहलुओं का फैलाव करने की कोशिश की गई।

साथ ही बुनियादी शिक्षा की अवधारणा को राष्ट्रीय स्तर पर ले जाने की कोशिश आज भी जारी है।

शिक्षा से जुड़े मसलों के बारे में क्रियात्मक शोध कार्य भी किया गया। इस संदर्भ में कक्षा–कक्ष में सीखने–सिखाने को लेकर कुछ शोध की गई है।

आज के संदर्भ में बुनियादी शिक्षा को अपनाते हुए हम जो हासिल कर पाए हैं उन पर एक नजर डालना लाजिमी होगा।

कक्षा के ढांचे में बदलाव

- पाठ्यपुस्तकीय शिक्षण सर्वमान्य शिक्षण नहीं, सीखने के लिए कक्षाओं में बच्चों के द्वारा अपने संदर्भ की पुस्तकों का उपयोग किया जाता है।
- बच्चों को हाथों से रचने के अवसर उपलब्ध कराए जाते हैं।
- बच्चों को अपने परिवेश में ले जाया जाता है जहां उनको विभिन्न प्रकार के कार्य करने को प्रेरित किया जाता है।
- बच्चों को सवाल पूछने के लिए प्रेरित किया जाता है। ज्ञान के निर्माण पर कोई भी बच्चा सवाल कर सकता है।
- बच्चे को असहमति जताने का पूरा अधिकार होता है।
- बच्चों की सीखने में सक्रिय भागीदारी होती है।
- प्रतियोगिता के बजाए सहयोगपूर्ण क्रियाकलाप और सामूहिक विकास को तवज्जो दी जाती है।
- बच्चों की दिलचस्पी, सीखने की रणनीति और विविधिता को मान्यता दी जाती है।
- सीखने की प्रक्रिया को बच्चे के संदर्भ से जोड़ने का प्रयास किया जाता है।

पाठ्यक्रम एवं विषयवस्तु

विगत वर्षों में यह समझने का प्रयास किया है कि बुनियादी शिक्षा का पाठ्यक्रम क्या हो? कुछ वर्कशीट्स भी तैयार की गई। विद्या भवन द्वारा बुनियादी शिक्षा के दायरे में उद्योग केंद्रित शिक्षण पर कार्यपुस्तकों की श्रृंखला का प्रकाशन किया गया है। साथ ही उच्च प्राथमिक कक्षाओं के लिए शिक्षण सामग्री 'कुछ करें' शीर्षक से प्रकाशित की गई। प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक कक्षाओं के लिए पाठ्यक्रम की रचना करने का प्रयास भी किया जा रहा है। बुनियादी शाला के शिक्षकों के साथ पाठ्यक्रम की रचना करने संबंधी कार्यशालाओं का आयोजन किया जाता रहा है। विद्या भवन में गठित रिसर्च फोरम के तत्वावधान में सीखने–सिखाने की प्रक्रियाओं को समझने के लिए शिक्षकों के द्वारा

एक्शन रिसर्च की जाती है। रिसर्च फोरम के तहत कक्षा–कक्ष की उन बारीकियों को समझने के लिए एक्शन रिसर्च की गई हैं, जिन्हें समय–समय पर अपनी पत्रिकाओं में प्रकाशित किया जाता रहा है।

गांधीवादी शिक्षा केंद्र की स्थापना

विद्या भवन का मानना है कि बुनियादी शिक्षा आज भी प्रासंगिक है। अब हमारी समझ और भी पुख्ता हो गई कि गांधी ने बुनियादी शिक्षा को लेकर अपने जमाने के लिए जो बातें कही थीं उनको यथावत लागू करना उचित नहीं होगा। हालांकि यह बात खुद गांधी ने भी अलग–अलग मंचों पर कही थी कि बुनियादी शिक्षा को कहीं भी हूबहु लागू करना अप्रासंगिक होगा। इस समझ के चलते गांधी के शिक्षा के सिद्धांतों को आज के संदर्भ में बड़ी सावधानी से टटोलने और उपयोग करने की जरूरत है।

अब तक बुनियादी शिक्षा को लेकर हमारी जो सोच बनी है, जो भी उपलब्धियां हासिल की हैं उनके आधार पर मनोबल बढ़ा है। तीसरे चरण में कार्य करते हुए हमारे सामने सबसे बड़ी चुनौती प्रकट हुई, वह यह कि बुनियादी शिक्षा को सर्वसाधारण की शिक्षा के दायरे में लाने के लिए हमें सघन रूप से कार्य करने की जरूरत है। परियोजना के दूसरे चरण में हमने बुनियादी शिक्षा संदर्भ केंद्र की स्थापना की थी जिसके तहत बुनियादी स्कूल के माध्यम से समाज के साथ रिश्ता कायम किया और आसपास की स्कूलों में बुनियादी शिक्षा को अपनाने के लिए प्रेरित किया। तीसरे चरण में हमने जब इस विचार को राजस्थान समेत अन्य राज्यों की जिला प्रशिक्षण संस्थानों और उनकी लेब एरिया की स्कूलों में संवाद करने का प्रयास किया तो अहसास हुआ कि बुनियादी शिक्षा दर्शन के कैनवास को और व्यापक करने की आवश्यकता है। साथ ही यह भी महसूस होता है कि गांधी जी ने संपूर्ण मानव जाति के उत्थान के लिए रास्ता बताया है। इस लिहाज से गांधी के संपूर्ण दर्शन को समझना भी जरूरी है। उल्लेखनीय है कि विद्या भवन सोसायटी गांधीवादी विचारधारा की नैतिक विरासत का उत्तराधिकारी रहा है। विद्या भवन सोसायटी उस दौर का प्रतिनिधित्व करती है जबकि साम्राज्यवादी एजेंडे को चुनौती देने के लिए एक नई शिक्षा प्रणाली बुनियादी शिक्षा–गढ़ी गई। हालांकि आजादी के बाद भी नीति निर्माताओं ने गांधी के सार तत्वों को अनदेखा किया मगर आज भी उनके पास यह कहते रहने के कि गांधी विचार ही उनकी प्रेरणा के स्रोत हैं, कोई विकल्प नहीं है। गांधीवादी दर्शन के पीछे ऐसी ही नैतिक शक्ति छिपी हुई है।

बुनियादी शिक्षा की इस पूरी यात्रा में जितनी चीजों का जिक्र किया गया है उससे कहीं ज्यादा छूटी हैं। और वे छूटी हुई चीजें काफी महत्वपूर्ण हैं। उन छूटी हुई चीजों की भी पहचान कर उन पर निरंतर संवाद बनाने की कोशिश कभी और।

कालू राम शर्मा : लंबे समय तक एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से जुड़े रहे। विद्या भवन में बुनियादी शिक्षा परियोजना में संलग्न रहे। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन, देहरादून में कार्यरत।

नई कोपलें

मॉर्जरी सॉइक्स

अब तक हमने पढ़ा कि जोहानसबर्ग लौटने पर गांधीजी को एक ऐसी जगह की तलाश थी, जहां सत्याग्रहियों के जेल जाने के बाद, उनके आश्रित रह सकें। शुरू–शुरू में सत्याग्रहियों के आश्रितों को जरूरत के मुताबिक मासिक भत्ता दिया जाता था। लेकिन गांधीजी ने सोचा कि यह तरीका लोगों को धोखेबाजी के लिए उकसा सकता है। तो उन्होंने एक ऐसे सहकारिता आधारित कॉमनवेल्थ की जरूरत महसूस की जो जोहानसबर्ग से बहुत दूर न हो। क्योंकि फीनिक्स काफी दूर पड़ता था। गांधीजी की इस परेशानी को उनके मित्र हरमान कालेनबाख ने 'टॉल्सटॉय फार्म' की स्थापना कर दूर कर दी। यहां गांधीजी ने अपने अनुभवों और प्रयोगों के सहारे शिक्षा की एक सच्ची व्यवस्था विकसित करने का प्रयास किया। हालांकि फार्म स्कूल अधिक दिनों तक नहीं चल पाया। स्थापना के एक साल बाद ही गांधीजी और जनरल स्मट्स के बीच समझौता हुआ और सत्याग्रह समाप्त कर दिया गया। कॉलोनी से परिवार निकल कर अपनी सामान्य जिंदगी में जाने लगे। वहां रुक जाने वालों में से अधिकतर मूल रूप से फीनिक्स के ही रहने वाले थे और कुछ समय बाद वे भी वापस चले गए। दो या तीन साल बाद मगनलाल गांधी के नेतृत्व में फीनिक्स के बच्चे भारत आए। 1915 की फरवरी में जब गांधीजी भारत आए, तब ये बच्चे शांतिनिकेतन में थे। इस तरह 'टॉल्सटॉय फार्म' के मार्फत गांधीजी ने नई तालीम के बीज दक्षिण अफ्रीका में बोए। गांधीजी ने लिखा था कि टॉल्सटॉय फार्म में मेरा विश्वास और साहस, दोनों ही अपने चरम पर थे। अब आगे...

1930 में गांधीजी साबरमती आश्रम से पैदल निकले और समुद्र तट पर स्थित दांडी की ओर चल पड़े। विश्व प्रसिद्ध दांडी मार्च शुरू हो चुका था। यहां गांधीजी के जीवन का एक दौर खत्म हो रहा था और अगला अध्याय शुरू हो रहा था। इस बार उन्होंने उस स्थान को छोड़ दिया था, जहां वे 1915 में भारत वापसी के बाद से रह रहे थे। उन्होंने संकल्प लिया कि जब तक भारत को आजाद नहीं करा लेंगे, तब तक आश्रम नहीं लौटेंगे। अगले तीन साल गांधीजी के जीवन में काफी नाटकीय रहे – गांधी–इरविन समझौता, गोलमेज सम्मेलन, दमन का नया दौर और बड़े पैमाने पर गिरफ्तारियां। 1932 में गांधीजी ने पूना में अनशन किया जिससे अस्पृश्यों की बदहाली की ओर पूरे देश का ध्यान गया। उनकी इस घोषणा की ओर भी सभी का ध्यान गया कि अब अछूतों को सम्मान दिलाना ही अब उनका केंद्रीय सरोकार रहेगा। 1933 में कैद से रिहा होते ही, उन्होंने पूरे देश के साथ संवाद और संचार का काम करते आ रहे 'यंग इंडिया' को बंद कर 'हरिजन' की शुरुआत की। अब उनके सामने सवाल यह था कि वे कहां जाए? अपने सेवा कार्यों के लिए किस स्थान को अपना केंद्र और आधार बनाएं? उसी समय उनके मित्र जमनालाल बजाज ने उन्हें वर्धा

स्थित अपने घर में विश्राम और चिंतन करने का न्यौता दिया। जमनालाल बजाज काफी संपन्न लेकिन विनम्र व्यक्ति थे। उनके प्रति लोगों के आदर ने वर्धा समेत आस–पड़ोस के कई गांवों को रचनात्मक कार्यक्रमों की एक जीवंत प्रयोगशाला में तब्दील कर दिया था। विनोबा भावे यहां पहले से ही काम कर रहे थे। गांधीजी के यहां आगमन के कुछ ही समय के भीतर जमनालाल बजाज के खूबसूरत बगीचों वाले घर में ग्रामोद्योग परिषद की स्थापना कर दी गई। मगनलाल गांधी के सम्मान में इसका नाम मगनवाड़ी रखा गया क्योंकि प्रारंभिक वर्षों में खादी और अन्य कार्यक्रमों में अपनी महारत से उन्होंने अद्‌भुत योगदान दिया था। 1934 से 1936 तक गांधीजी मगनवाड़ी में ही रहे। इसी दौरान मीरा बहन हरिजन आबादी वाले गांवों और उनकी कपास उत्पादन पत्तियों को समझने–बूझने का प्रयास कर रही थीं। अंत में उन्होंने अपने सेवा कार्यों के लिए सेगांव को चुना। 1939 में आयोजित पहले बेसिक शिक्षा सम्मेलन में आशा देवी ने इस गांव का वर्णन कुछ इस तरह दिया था : यह लगभग 700 की आबादी वाला एक छोटा–सा गांव है। गांव में आधे से ज्यादा हरिजन हैं। साल के चार–पांच महीने यहां खेती होती है, सभी के लिए काम रहता है। उस समय यहां सौंदर्य व संपन्नता का भ्रम पैदा हो जाता है। लेकिन साल के बाकी दिनों में यह गांव मध्य प्रांत के मैदानी इलाकों में धूल का एक गुबार भर होता है। हर घर में लोग बेरोजगार रहते हैं। यहां पानी का इकलौता स्रोत कुछ गंदे कुएं हैं। अलग–अलग जातियों के लोग इन कुओं को किसी को छूने नहीं देते। यहां न तो कोई पहाड़ हैं, न पेड़ हैं, और न ही बच्चों के खेलने–कूदने के लिए मैदान हैं। जमीन सिर्फ 20 परिवारों के पास है। बाकी परिवार भूमिहीन मजदूर हैं जिनमें से अधिकतर को सरकारी जेलों में मिलने वाला तीसरे दर्जे का भोजन भी मयस्सर नहीं है। जमनालाल बजाज इस गांव के मुख्य मालगुजार थे। उनकी भी इस बात में काफी उत्सुकता थी कि यहां क्या किया जा सकता है। मीरा बहन ने गांव के बाहर स्थित जमना लाल जी के अमरूद के बगीचे के बाहर एक कुटिया डाल ली और सादगी से रहने लगीं। उनकी सेहत के हिसाब से वहां का जीवन बहुत कठिन था। अप्रैल 1936 की गर्मी में उनकी तबियत खराब हो गई। जल्दी ही ये खबर मगनवाड़ी पहुंची। खबर मिलते ही गांधीजी ने संदेश भिजवाया कि वह उनकी मदद के लिए आ रहे हैं। 30 अप्रैल को वे तड़के ही पांच मील दूर स्थित सेगांव के लिए पैदल निकल पड़े। वहां पहुंचने पर उन्होंने देखा कि मीरा बहन ने अपने लिए एक कामचलाऊ डेरा डाला हुआ था – बांस की खपच्चियों से बनी झोंपड़ी, बागीचे में ही कुएं के पास नहाने के लिए एक आड़ और गड्‌ढा खोद कर बनाया गया शौचालय। उन्होंने एक छायादार पेड़ के नीचे चटाई बिछा दी जहां बैठ कर गांधीजी हरिजन के लिए लिखाई–पढ़ाई कर सकते थे और चिट्ठियां लिख सकते थे।

उस दिन गांधीजी ने गांव में संध्या प्रार्थना का आयोजन किया। उन्होंने कहा, मैं आपके गांव में आप सबकी सेवा करने आया हूं। मैं जानता हूं कि आपमें से कई लोग मुझे आशंका और भय की नजरों से देखते हैं क्योंकि मैं छुआछूत को खत्म करना चाहता हूं। मैं मानता हूं कि ईश्वर की नजर में सभी जाति के लोग समान हैं सिर्फ जन्म के आधार पर ऊंच–नीच का भेद करना अपराध है। इसके बावजूद मैं अपने विचार आप पर थोपूंगा नहीं, मैं आपको सिर्फ दलीलों और उदाहरणों से समझाने की कोशिश करूंगा। मैं रोगियों की मदद करूंगा और आपको इस बात के लिए प्रोत्साहित करूंगा कि आप गांव को स्वच्छ रखें तथा ग्रामोद्योगों को बहाल करके अपने पैरों पर खड़े हों। यदि आप मेरे साथ सहयोग करेंगे तो मुझे खुशी होगी।

यह पहला दौरा काफी संक्षिप्त रहा, क्योंकि मई और जून के लिए गांधीजी का कार्यक्रम पहले से तय था। जब वे गांव से चले गए, तो जमनालालजी ने गांव में ही एक कुटी का निर्माण करा दिया। अब उनका सारा जीवन यहीं व्यतीत होने वाला था। 15 जून को वह मगनवाड़ी लौट आए और उन्होंने संदेश भिजवाया कि

अगले दिन वे सेगांव पहुंच जाएंगे। बरसात का मौसम शुरू हो चुका था और कुटी का मिट्टी का दरवाजा बिल्कुल गीला था। सेगांव में कई लोग उसे सुखाने में दिन भर लगे रहे। उस रात भयंकर तूफान आया और खूब बारिश हुई। लोगों को लगा कि ऐसे मौसम में बापू नहीं आ पाएंगे। परंतु संयोग देखिए कि 16 की सुबह को बादल छंट गए। गांधीजी ने पूछा, चलें? क्या सोचते हो? उनके भतीजे कानू ने युवकोचित उत्साह के साथ जवाब दिया, हां, क्यों नहीं। इस तरह गांधीजी की यह छोटी सी टोली सेगांव के लिए रवाना हो गई। अभी वे आधा मील ही चले होंगे कि एक बार फिर बादल बरसने लगे। लेकिन अब गांधीजी वापस मुड़ने को तैयार नहीं थे। दूसरी ओर सेगांव में उनका इंतजार कर रहे सारे लोग उनकी कुटी में एक–दूसरे से सटे बैठे थे। भयानक तूफान से सब डरे हुए थे। सबको यही लग रहा था कि इस मौसम में वे नहीं आ पाएंगे। लेकिन वे तो पहुंच ही गए। उनकी टोली पर सबसे पहले नजर पड़ी मीरा बहन की। वे पूरी तरह तरबतर और ऊपर से नीचे तक गारे में सने हुए थे। शरीर सुखा कर कपड़े बदलने के बाद गांधीजी बोले, यूं तो दक्षिण अफ्रीका में मैंने एक से एक मुश्किलों को झेला है, पर ऐसे तूफान में इतनी दूर तक पैदल कभी नहीं चला!

गांधीजी ने अपने साथियों से गांव में काम–काज की योजना बनाने का आग्रह किया। वे रोज एक घंटा रोगियों की सेवा में देने लगे। उन्होंने उस सड़क को ठीक करवाया जहां बारिश में बैलगाड़ियां फंस जाती थीं। सेगांव के लिए कोई संपर्क मार्ग नहीं था। यद्यपि वर्धा के पूरब में सड़क ठीक–ठाक थी, जो जोकि ऊंची जगह थी। परंतु सेगांव उससे लगभग एक मील दक्षिण में निचले इलाके में था और यही आखिरी मील असली परेशानी था। उन्होंने आश्रम पर ही थोड़ी सी खेती शुरू कर दी और कुछ दुधारू मवेशी भी पालने लगे। वे गांव के लिए एक मॉडल तैयार कर रहे थे। इस काम में गजानन नायक ने भी मदद दी। उन्होंने गांव वालों को खजूर का गुड़ बनाने की विधि सिखाई। कुछ लोग मधुमक्खी पालन और मिट्टी के बर्तन बनाने लगे। गांधी जी स्थानीय जिला परिषद के अधीन चलाए जा रहे गांव के स्कूल में बच्चों को कताई सिखाने लगे। जल्दी ही वहां एक कताई केंद्र खोल दिया गया।

सेगांव में जम जाने के बाद गांधीजी ने विस्तार से जाना कि गांव के स्कूल में क्या चलता है – उन्हें देश भर के हजारों स्कूलों से यहां कुछ भी अलग नहीं दिखा, न कुछ अच्छा और न बुरा। उन्होंने लिखा, हम बगैर इस बात की परवाह किए कि बच्चों का विकास करना है या उन्हें प्रोत्साहित करना है, तमाम किस्म की सूचनाएं उनके दिमाग में ठूंसे जा रहे हैं। बच्चे पढ़ते तो थे लेकिन पता नहीं कितना समझते थे। वे लिखते थे, लेकिन उनकी लिखावट बहुत भद्दी होती थी। गांधीजी ऐसी लिखावट को दाउब कहते थे। उनका दिमाग लौट–लौट कर टॉल्सटॉय फार्म के अपने स्कूल में जा पहुंचता था। वहां उनके अनुभव बहुत सुखद रहे थे। जैसा कि उन्होंने कहा था, चालीस साल से उन्हें चश्मे में जो धुंध दिखायी दे रही थी, वह सेगांव के अनुभवों से साफ हो गयी। क्या यह इस निर्जीव, तथाकथित शिक्षा पर विराम लगा कर कुछ बेहतर तलाशने का वक्त नहीं था? उन्हें 1937 में इसका मौका मिल गया। ब्रिटिश भारत के प्रांतों में निर्वाचित सरकारों ने सत्ता संभाली और उनमें से अधिकतर पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का नियंत्रण था। स्वास्थ्य और शिक्षा विभागों की जिम्मेदारी भी इन्हीं सरकारों के पास थी। गांधीजी ने इन सरकारों का समर्थन किया और हरिजन के माध्यम से प्रांतीय सरकारों को नीतिगत दिशानिर्देशों का सुझाव दिया। उन्होंने कहा कि सभी प्रांतों में बुनियादी दिक्कतें एक जैसी हैं और उन्हें एक ही तरीके से हल किया जा सकता है। हालांकि वे सभी सरकारों से अपील कर रहे थे, परंतु उनकी विशेष अपील कांग्रेस की सरकारों से ही थी। उन्होंने इन सरकारों से सबसे पहले गांवों की जरूरतों पर ध्यान देने का आग्रह किया। उनका सुझाव था कि सरकार नमक कर हटा ले और शराब

पर राजस्व वसूली बंद करे। वे चाहते थे कि शराबखोरी के खिलाफ सरकार तीखा अभियान चलाए। उनका कहना था कि जेलों को सुधारगृह और कार्यशाला बना देना चाहिए। जहां तक शिक्षा की बात है, गांधीजी का सुझाव था कि सरकारों को ऐसी शिक्षा देनी चाहिए जिससे लोग अपने पास उपलब्ध साधनों के भीतर ही अपनी बुनियादी जरूरतों को पूरा कर सकें। साल की शुरुआत में गांधीजी ने उन तमाम समस्याओं के बारे में बात की, जिन्हें वे जरूरी समझते थे : क्या हम शराबबंदी और शिक्षा दोनों को साथ लेकर चल सकते हैं? उन्होंने कहा था, नए सुधारों की सबसे क्रूर विडम्बना यही है कि हमारे पास बच्चों को शिक्षा देने के लिए शराब की बिक्री से आने वाले राजस्व पर निर्भरता के अलावा और कुछ नहीं है। लेकिन, बच्चों को आज जैसी शिक्षा दी जा रही है, यदि हम उसके मोह को खारिज कर सकें, तो इस समस्या से उबर सकते हैं। मद्रास प्रांत की कांग्रेस सरकार के मुखिया और गांधीजी के परम मित्र राजाजी ने कहा था, यदि लोग उदार होंगे तो वे यह कह सकते हैं कि शिक्षा मिले न मिले, मगर शराबबंदी जरूर रहेगी। ऐसी शिक्षा से आखिर क्या फायदा? जैसे एक शराबी शराब के मद में धुत्त रहता है, उसी तरह एक शिक्षित व्यक्ति अपनी सुख–सुविधाओं में मदमस्त रहता है – वह भी किसी शराबी से ज्यादा सभ्य नहीं होता। राजाजी एक बुनियादी सिद्धांत की ओर इशारा कर रहे थे। वे मौजूदा शिक्षा को खारिज कर रहे थे, क्योंकि वह लोभ पैदा करती है। उनका आदर्श तो एक सभ्य–सुसंस्कृत सादगी थी। गांधीजी ने इसी को असली सौंदर्य करार दिया था।

गांधीजी अपनी वार्ताओं में दो प्रमुख विचारों पर जोर दे रहे थे। पहला, मैट्रिकुलेशन तक की सामान्य शिक्षा को एक समग्र इकाई के रूप में देखा जाना चाहिए, यह शिक्षा ग्रामीण स्कूलों में बच्चों की मातृभाषा में मिलनी चाहिए और इसकी शुरुआत सात साल की अवस्था से होनी चाहिए। इस शिक्षा की अवधि 7–8 साल से ज्यादा नहीं होनी चाहिए और उसमें किसी उपयोगी व उत्पादक हस्तकौशल का अभ्यास शामिल होना चाहिए ताकि स्कूल खुद को स्वावलंबी बना सकें। अध्यापकों का एक बड़ा तबका ऐसे विचारों से अनभिज्ञ था। उन्होंने ये बातें सुनते ही तमाम सवाल उठाए और इनकी आलोचना की। इन्हीं शंकाओं का जवाब देने के लिए गांधीजी ने 31 जुलाई, 1937 के हरिजन में अपना ऐतिहासिक लेख लिखा था। शिक्षा से मेरा मतलब बच्चे के शरीर, मस्तिष्क और आत्मा के सर्वश्रेष्ठ आयामों को सामने लाकर उसका चौतरफा विकास करना है। साक्षरता न तो शिक्षा की शुरुआत है, न उसका अंत है। यह सिर्फ एक साधन है जिससे लोगों को शिक्षित किया जा सकता है। साक्षरता अपने आप में शिक्षा नहीं है। इसलिए मैं किसी बच्चे को शिक्षा देने की शुरुआत किसी उपयोगी हस्तकौशल से करूंगा, ताकि वह प्रशिक्षण शुरू करने के क्षण से ही उत्पादन में योगदान देने लगे। इस तरह हरेक स्कूल को स्वावलंबी बनाया जा सकता है, शर्त यह है कि इन स्कूलों में जो उत्पादन होगा उसका जिम्मा राज्य को संभालना होगा। मेरा मानना है कि ऐसी शिक्षा में मस्तिष्क और आत्मा का सर्वोच्च विकास हो सकता है। किसी भी हस्तकौशल को महज यांत्रिक तरीके से नहीं सिखाया जाना चाहिए, जैसा कि आज किया जा रहा है।

बल्कि इसका तरीका वैज्ञानिक होना चाहिए। बच्चे को प्रत्येक प्रक्रिया में क्यों और कैसे का जवाब मिलना चाहिए। मैंने खुद इसी तरह चप्पल बनाना और यहां तक कि सूत कातना सीखा है और मुझे अच्छे नतीजे मिले हैं। इस प्रणाली में इतिहास और भूगोल के ज्ञान को अलग नहीं किया जाता। मैं मानता हूं कि इस तरह की शिक्षा बोलते–बतियाते हुए ही सबसे अच्छी तरह दी जा सकती है। इस माध्यम से किसी बच्चे को पढ़ने या लिखने के मुकाबले 10 गुना ज्यादा सिखाया जा सकता है। बाद में आप उसे अक्षर ज्ञान भी दे सकते हैं... और जहां तक गणित की बात है, विद्यार्थी उसे हस्तकौशल के साथ–साथ ही सीख सकता है।

मैं प्राथमिक शिक्षा को सबसे ज्यादा महत्व देता हूं।

मेरे ख्याल से प्राथमिक शिक्षा मौजूदा मैट्रिकुलेशन के बराबर ही होनी चाहिए सिवाय अंग्रेजी के।

यह टॉलस्टॉय फार्म के गांधी का कथन है, जिनके पास अफ्रीका में सीखे सबकों की पुष्टि के लिए भारत में पिछले 20 साल के अनुभव थे। 1937 के भारत में उनका हरेक वाक्य अपने भीतर एक क्रांति छिपाए हुए था। शिक्षा का मकसद सिर्फ सूचनाएं देने तक सीमित नहीं है। यह प्रत्येक मनुष्य के भीतर अच्छाई की छिपी हुई संभावना को बाहर निकालने का नाम है। यह सिर्फ बौद्धिकता से ही नहीं जुड़ी है, बल्कि शरीर और आत्मा से भी इसका उतना ही सम्बन्ध है। साक्षरता तो सिर्फ एक औजार है, जो अंत तक साधन का काम करती है। यह अपने आप में साध्य नहीं है। बल्कि यह अनिवार्य तौर पर साध्य की प्राप्ति के लिए उपलब्ध सर्वश्रेष्ठ औजार भी नहीं होती, क्योंकि साध्य तो मनुष्य के चौतरफा विकास की उच्चतम अवस्था है। यह साक्षरता उस साधारण शिक्षा के लिए पहला औजार नहीं है, जिसमें गतिविधियां और उद्देश्यपूर्ण काम आते हैं। गांधीजी ने ये सारी बातें 50 साल पहले लिखी थीं लेकिन 1987 के भारत में आज भी वही पुराने आदर्श और पुरानी आदतें कायम हैं, जो सपना उन्होंने देखा था वह आज भी अधूरा है।

गांधीजी द्वारा लिखा दूसरा पैरा भी उतना ही क्रांतिकारी है। वे शुरू से मानते थे कि शारीरिक स्वास्थ्य का आधार परिवार या समुदाय की आवश्यकताओं के लिए किया जाने वाला कठिन शारीरिक काम होता है और उससे उदार आदान–प्रदान व परस्पर सम्मान पैदा होता है। उस समय हाथों व आंखों की दक्षता तथा मस्तिष्कीय विकास के सम्बन्ध उनके सामने उतने स्पष्ट नहीं थे। ऐसा लगता है कि अपने बच्चों के साथ घर से दफ्तर तक रोज पैदल आते–जाते हुए या टॉलस्टॉय फार्म की अलसाई दुपहरी की कक्षाओं में वे अध्ययन में बच्चों की दिलचस्पी पैदा करने के लिए, उनके अनुभवों का इस्तेमाल नहीं करते थे बल्कि संबंधित विषय की निहित रोचकता और किस्सागोई की कला पर ज्यादा विश्वास करते थे। 1937 में उन्होंने लिखा कि मुझे स्वीकार करना होगा कि अब तक मैं यही कहता रहा हूं कि बौद्धिक प्रशिक्षण के साथ–साथ शारीरिक कौशल का प्रशिक्षण भी दिया जाना चाहिए। परंतु अब मैं कह सकता हूं कि बौद्धिक क्षमताओं को विकसित करने के लिए भी पहले शारीरिक कौशल पर जोर दिया जाना चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि मानवीय प्रशिक्षण को वैज्ञानिक होना पड़ेगा। जिस भी हस्तकौशल को चुना जाता है, प्राकृतिक विज्ञान और इंसानी इतिहास के साथ उसके संबंधों की पूरी पड़ताल की जानी चाहिए, उसके सौंदर्य और सच्चाई के मानकों की पड़ताल होनी चाहिए और इस बात की भी, कि जनकल्याण व संपूर्ण मानवता के हित में उसकी क्या भूमिका होगी। इस तरीके से सिखायी जाने वाली हस्तकौशल यांत्रिक कवायद नहीं रह जाती है बल्कि तमाम विषयों के प्रति बौद्धिक जिज्ञासा ही बढ़ाती है। इस किस्म का हस्तकौशल शोध और खोजों के लिए नए द्वार खोलता है। इसके बाद तीसरे किस्म की क्रांति आती है। गांधीजी अलग तरह के शहरी हाई–स्कूलों के खिलाफ थे जहां पढ़ कर बच्चे शारीरिक श्रम और ग्रामीण परंपराओं को उपेक्षा की नजर से देखने लगते हैं। इसकी बजाय वे गांवों में सर्वांगीण शिक्षा के ऐसे केंद्र चाहते थे जो अंग्रेजी की अनिवार्यता से पूरी तरह मुक्त हों। मातृभाषा में शिक्षा की मांग कोई नई चीज नहीं थी। रवींद्रनाथ टैगोर कम से कम चालीस साल से इसकी वकालत कर रहे थे और उसे करके दिखा दिया था। गांधीजी उसी अवधारणा को अब गांव केंद्रित योजना के रूप में ला रहे थे, जो राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा की आवश्यकता को पूरी कर सके। गांधीजी ने कहा था, उच्चतर स्तर पर, जिन्हें विशिष्ट प्रशिक्षण प्राप्त श्रमिकों की जरूरत है, उन्हें इंजीनियरों, केमिस्टों, फाइनेंसियरों आदि के प्रशिक्षण पर पैसे खर्च करने चाहिए। ऐसे कॉलेजों में शिक्षण को जांचने की कसौटी, वे विश्वविद्यालय हो सकते हैं, जिनसे वे संबद्ध हैं। मेडिकल और कृषि विश्वविद्यालय दूसरी श्रेणी में आते हैं। डॉक्टरों के प्रशिक्षण का काम अमीरों के परोपकारी खाते से किया जाना चाहिए। ऐसे कृषि विश्वविद्यालय, जो अपने उत्पादों के माध्यम से खुद को आत्मनिर्भर नहीं बना सकते, उन्हें कायम रखने की कोई जरूरत

नहीं है। राज्य को सिर्फ उन्हीं कामगारों को कॉलेज शिक्षा देनी चाहिए, जो उसे अपनी जिम्मेदारियों के निर्वाह हेतु आवश्यक हों। यहां गांधीजी के पहले अखिल भारतीय असहयोग आंदोलन की अनुगूंज यहां सुनायी देती है। अंग्रेजों ने 1857 के बाद जब ईस्ट इंडिया कंपनी के तहत आने वाले भारतीय क्षेत्रों का शासन अपने हाथ में लिया था, तो उसने वहां तीन 'सी' की स्थापना की– काउंसिल, कोर्ट और कॉलेज। ये तीनों इकाइयां अंग्रेज सरकार की सत्ता थोपने के साधन थीं। कई साल बाद एक नई तालीम सम्मेलन में पट्टाभि सीतारमैया ने सही ही कहा था कि यह कोई संयोग नहीं था कि गांधीजी ने 1920 में इन्हीं तीनों 'सी' के बायकॉट का आह्वान किया था। इसके बाद सरकारी कॉलेजों के विकल्प के तौर पर स्थापित की गई कुछ विद्यापीठों ने बेहतरीन काम भी किया, लेकिन शिक्षा की एक समेकित राष्ट्रव्यापी रूपरेखा 1937 में ही सामने आयी। क्रांतियां परेशान करती है और ज्यादातर लोग परेशान नहीं होना चाहते। कुछ लोग ऐसे थे जिनके पास दृष्टि भी थी और कल्पना भी थी – ऐसे लोग शुरू से ही गांधीजी की शैक्षणिक क्रांति का स्वागत कर रहे थे लेकिन अधिकतर शिक्षाशास्त्रियों ने इस पर सवाल खड़े किए। उनकी आशंकाओं में दो बातें प्रमुख रूप से आती थीं। पहली यह कि गांधीजी साक्षरता और साहित्यिक शिक्षा की उपेक्षा कर रहे हैं। दूसरी बात यह थी कि कहीं उनके श्रम–विद्यालय सीलोन के अर्धदास बागानों की तरह बाल श्रम के अड्डे बन कर न रह जाएं। अधिकतर आलोचकों ने गांधीजी की बातों का बिल्कुल गलत मतलब निकाला क्योंकि, गांधीजी के अनुसार, ऐसे आलोचकों के पूर्वाग्रहों ने उनकी नजर ही धुंधली कर दी थी। फिर भी, गांधीजी ने काफी सयंम से सारी शंकाओं का जवाब दिया। 1937 के आखिरी महीनों में हरिजन के पन्ने इन्हीं चर्चाओं से भरे रहते थे। यह चर्चा कई साल तक चलती रही। 1938 में जे बी कृपलानी ने एक पुस्तिका लिखी, जो गांधीजी के शब्दों में उन सारी आशंकाओं का जवाब देने की कोशिश है जिन्हें मेरी ताजा सनक कहा जा रहा था। यह पुस्तिका दिखाती है कि इस सनक का एक ठोस आधार है। इस ताजा सनक के बारे में पढ़ना काफी दिलचस्प होगा, खासकर इसलिए, क्योंकि इसमें यह बात काफी जोर देकर कही गई है कि गांधीजी के शैक्षणिक सिद्धांत दरअसल, उनके दर्शन का अनिवार्य हिस्सा थे और उनके तमाम कार्यक्रमों की ही तरह ये सिद्धांत भी अहिंसा और सच्चाई पर आधारित इंसानी समाज के उनके नजरिए से पैदा हुए थे। खैर, अब बहस–मुबाहिसों से आगे बढ़ कर कुछ करने का वक्त आ गया था।

क्रमशः...

साभार : नई तालीम की कहानी से।

मार्जोरी साइक्स, (1988), नई तालीम की कहानी, अनुवाद : **श्री प्रकाश**, क्षेत्रीय प्रारंभिक शिक्षा संसाधन केंद्र, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

पत्र की शिक्षा

प्रेमपाल शर्मा

शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष संवाद यानि कि पत्र, चिट्ठी लिखना भी है। पाठ्य पुस्तक में दिए गए प्रश्न और उनके रटे हुए जवाब तो ज्यादातर विद्यार्थी लिख देते हैं। कई बार तो शब्द–दर–शब्द लिखने की प्रतिभा चकित भी करती है। वैसे देखा जाए, तो ज्यादातर परीक्षा इसी प्रतिभा के लिए आयोजित होती हैं। लेकिन इन्हीं विद्यार्थियों से यदि लीक से हटकर कुछ लिखने के लिए कहा जाए, तो इनके पैर लडखड़ाने लगते हैं। दिल्ली का एक वाक्या गौर करने लायक है। सरकारी स्कूल में कक्षा छः में पढ़ने वाली एक बच्ची की मां शिकायत भरे सवाल में अध्यापक के पास आई। उसकी शिकायत यह थी कि मेरी बेटी को आपने क्या सिखाया है? यह चिट्ठी–पत्री तक तो लिख नहीं सकती। जैसे दिल्ली के सरकारी स्कूल लगभग अनाथालय की तरह चल रहे हैं। सरकारी स्कूल की शिक्षिका के लिए भी यह नई बात थी कि कोई अभिभावक ऐसी शिकायत लेकर आएं। वहां शायद ही खाए–पीए परिवार, मध्य वर्ग या सरकारी कर्मचारी फिलहाल अपने बच्चों को पढ़ने के लिए भेजता हो। जिन गरीब–मजदूरों के बच्चे पढ़ते हैं, उन्हें शायद ही अपने बच्चों को देखने या उनके स्कूल जाने की फुरसत मिलती हो। उन्होंने वैसे भी सब कुछ स्कूल के भरोसे छोड़ दिया है। फिर ऐसा प्रश्न कोर्स से बाहर का?

शिक्षक की नजरों में वह बालिका पढ़ने में ठीक–ठाक थी। क्लास में अव्वल आने वाली। शिक्षिका ने बच्ची से पूछा कि क्या तुम पत्र नहीं लिख सकती हो? बच्ची का जवाब रटा हुआ था, लिख सकती हूं। लेकिन मैडम! मां तो बुआ को पत्र लिखने के लिए कर रही थीं। हमें कोई ऐसा पत्र लिखना बताया गया है? हमें तो प्रिंसिपल, प्रधानमंत्री या डी. एम. या कलेक्टर का पत्र लिखना बताया गया है। शिक्षका के पास कोई जवाब नहीं था। मां ने फिर अपनी बात विस्तार से बताई कि मैं कई रोज से इसे कह रही हूं कि फसल कट गई हैं, बीमार भैंस ठीक हो गई है, अपनी बुआ को चिट्ठी लिख दे। लेकिन यह नहीं लिख सकती।

इस अनुभव से शिक्षा की रटंत पद्धति को समझा जा सकता है। अपने बचपन को याद करें, तो तब भी यही होता था। पत्रों के नाम पर या तो स्कूल न आ पाने के लिए बीमारी का कारण या सफाई की समस्या के लिए डी.एम. को पत्र आदि। एक रटे–रटाए सांचे में जिसकी शुरूआत अक्सर होती थी 'सविनय निवेदन' यह है कि, अंत 'आपका आज्ञाकारी'। यहां तक कि स्कूल छोड़ने के बीस–तीस वर्षों बाद तक अपने उन सहपाठियों के पत्र जब भी आते, चाहे सुखद समाचार लिए हों या दुःखद, सबकी शुरुआत 'सविनय निवेदन' से ही होती है। वह सहपाठी को भी सविनय निवेदन ही करते हैं, कलेक्टर को भी और राष्ट्रपति को भी। उन्हें शब्दों के साथ रचनात्मकता अपनेपन की संवदेना के साथ खेलना, खोजना सिखाया ही नहीं गया। शायद ही उन्हें ऐसी पुस्तकों तक पहुंचने दिया जाता है जैसे– रवींद्रनाथ टैगोर के गांधी के नाम पत्र। प्रेमचंद, जैनेन्द्र कुमार के बीच पत्र संवाद

अथवा हजारी प्रसाद द्विवेदी और नामवर जी या राजेन्द्र यादव और दूसरे समकालीन लेखकों का आपसी पत्र व्यवहार। कहने की जरूरत नहीं कि उत्तर भारत की कई पीढ़ियों को कुछ विषयों– जैसे गाय, स्कूल, मित्र आदि पर निंबंध लिखवा कर शिक्षा की वैतरणी पार कराई गई है। स्कूली स्तर पर पत्र की शिक्षा न दे पाने के कारण हमें ऐसे हादसों का सामना करना पड़ा है, जिनका कुछ और उल्लेख मैं आगे कर रहा हूं।

पश्चिमी उत्तर प्रदेश के एक गांव के हाई स्कूल की कुछ समस्याएं थीं। मसलन खेल के मैदान के लिए कुछ जमीन की जरूरत। मुख्य सड़क से स्कूल को जोड़ने के लिए सड़क बनाना आदि। यह स्कूल पश्चिमी उत्तर प्रदेश के बुलंदशहर जिले में स्थित है। पत्र का नमूना मुझे भी देखने को मिला। उस पत्र को देखकर आप सिर्फ माथा पीट सकते हैं। क्या हमारे स्कूल के शिक्षक और प्राधानाचार्य शुद्ध भाषा भी नहीं लिख सकते? न भाव, न भाषा, न तथ्य। यदि ऐसा है, तो बच्चों को पढ़ाएंगे क्या? यहां भी मामला शिक्षा की रंटत और अध्ययन की सीमाओं का है। दोष शिक्षकों का भी नहीं। उन्हें भी किसने यह सब सिखाया।

एक और अनुभव पश्चिम उत्तर प्रदेश के ही एक गांव से है। गांव में खाद का एक गोदाम खोलने का अनुरोध करने के लिए मैंने उनको कलेक्टर या शासन के किसी उच्च अधिकारी से कहने या फोन करने के लिए कहा। मैंने उनसे बाकायदा प्रशासन को लिखित में आवेदन या पत्र लिखने के लिए कहा। कई महीने की परस्पर शिकायत के बाद समझ में यह आया कि असली समस्या एक सही पत्र लिखने की है। जो लोग गांव की इन स्थितियों से जुड़े हुए हैं वे समझ सकते हैं, कि पत्र लिखना उनके लिए कितनी टेड़ी खीर है। उन्हें बैंक चाहिए, अस्पताल चाहिए या किसी और समस्या का समाधान, लेकिन सबसे मुश्किल होता है ऐसे पत्र का आवेदन लिखना।

मुझे लगता है, सभी स्कूलों को इस पक्ष पर ध्यान देने की जरूरत है। यह हमारे पढ़े–लिखे होने की बुनियादी जरूरत है। कोई हर्ज नहीं, यदि शिक्षकों को भी ऐसा पत्र साहित्य उपलब्ध कराया जाए, जिससे प्रेरणा लेकर वे बच्चों को प्रेरित कर सकें। हर स्कूल के अंदर एक छोटा–मोटा पुस्तकालय इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभा ही सकता है।

और तो और, पत्र से मिलते–जुलते संवाद की समस्या दिल्ली की सहकारी आवासीय कॉलोनियों में भी आ रही है। लेकिन वहां भाषा की समस्या ज्यादा बुनियादी है। दिल्ली, हिंदी प्रांत में स्थित है। लेकिन यहां का मध्य वर्ग जिस ढंग से अंग्रेजी के प्रति पागल बना हुआ है, वहां छोटे–मोटे संवाद के नोटिस बोर्ड पर जो नमूने देखने को मिलते हैं, उन्हें देखकर तो लगता नहीं कि ये समाज पढ़ा–लिखा है।

पत्र सहित रचनात्मक लेखन को बढ़ावा देकर ही शिक्षा की इस खामी को सुधारा जा सकता है।

प्रेमपाल शर्मा : शिक्षा और समाज के मसलों पर निरंतर लेखन में संलग्न। रेल्वे विभाग दिल्ली में कार्यरत।

रंगमंच और बच्चे

हेमंत देवलेकर

अक्सर, जब मैं विद्यालयों या बस्तियों में नाटक की कार्यशाला करने जाता हूं, तो उसमें बच्चे बहुत ही उत्साह से शामिल होने आते हैं। जब उन सबसे परिचय लेने की बारी आती है, तो अधिकांश में थोड़ी झिझक होती है। अपने बारे में वे बहुत धीमी आवाज में कुछ बताने का प्रयास करते हैं। उन्हें इस प्रकार के आयोजन में कुछ नवीनता लगती है। लेकिन, धीरे–धीरे बच्चे इतने खुल जाते हैं कि कार्यशाला शोरगुल और धमाचौकड़ी में बदल जाती है। हमारा पहला उद्देश्य सफल हो जाता है कि सारे बच्चे आपस में खूब घुलमिल जाएं, अभी मैं नाटक की बात नहीं करूंगा, मैं बच्चों के इस नए माहौल की बात करना चाहूंगा।

मैंने देखा कि जो अंतर्मुखी बच्चे थे, जो संकोची प्रवृत्ति के थे, उनमें सामूहिकता का बोध पैदा हुआ और वे सब जब खाने बैठते थे, तो एक गोल घेरे में। सभी एक दूसरे के डिब्बे में से खा रहे हैं, एक दूसरे का ख्याल रख रहे हैं। कुछ बहुत शरारती या शैतान किस्म के बच्चे थे, जो अक्सर दूसरे साथियों के साथ मारपीट करते थे, उनके स्वभाव में अपने साथियों के लिए प्यार पैदा हो गया है। इस तरह सारे प्रतिभागी बच्चों में दोस्ती स्थापित हो गई थी। रंगमंच, समूह की एक कला है। यह हममें सामाजिकता का एक एहसास भरता है, एक–दूसरे में सुख–दुःख को साझा करने का भाव जगाता है।

अगले दिन से, सब बच्चों का परिचय होने के बाद हमने उनके साथ खेल खेलना शुरू किया। अब वहां बच्चे आजाद गगन में उड़ते हुए पंछी थे, जो चहचहा रहे थे और उड़ रहे थे। रंगमंचीय गतिविधियों के प्रशिक्षण कार्यक्रम में खेलों को हम तीन–चार वर्गों में बांट सकते हैं। पहला, शारीरिक व्यायाम या मनोरंजक खेल। दूसरा, एकाग्रता स्मरण शक्ति या बौद्धिक क्षमता बढ़ाने वाले खेल। तीसरा, भाषा के खेल (तत्काल बोलना और लिखना) और चौथा, अभिनय के खेल इत्यादि। नाटक की कक्षा की शुरूआत हमेशा खेलों के साथ की जाए, जिससे शारीरिक, मानसिक जड़ता टूटे और हमारा शरीर एक गतिशीलता व चेतनता में आ जाए। इसके बाद बच्चों को अपने मन से कुछ भी दृश्य प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित करें। आप उन्हें दृश्यों की थोड़ी–सी जानकारी दे सकते हैं, जैसे घर का, बाजार का, विद्यालय का या जंगल का कोई दृश्य...। किंतु उसके बारे में ज्यादा कुछ न बताया जाए, ताकि बच्चे अपनी कल्पना से उस दृश्य का निर्माण कर सकें। उनकी अबोधता ही उनकी मौलिकता है और वह सिर्फ बच्चे ही प्रकट कर सकते हैं, हम वयस्क नहीं। आप देखेंगे कि बमुश्किल 10–15 मिनट की तैयारी में वे कुछ दृश्य बना लेते हैं (ऐसा करवाते समय बच्चों को छोटे–छोटे समूहों में बांट दें, तो सभी को बराबर कुछ कर दिखाने का मौका मिलेगा)। वे बड़े उत्साह के साथ बारी–बारी से अपनी प्रस्तुतियां देते हैं। जब आप ये प्रस्तुतियां देखें, तो बीच में बच्चों को बिल्कुल भी टोकें नहीं, वे जैसा भी प्रस्तुत कर रहे हैं, करने दीजिए।

उन्हें देखते समय आपके मन में जो भी प्रतिक्रियाएं आती हैं उन्हें लिख जरूर लें। पूरे आशु अभिनय देख लेने के बाद सबका उत्साहवर्धन करें। इस प्रकार की तत्काल अभिनय की प्रक्रिया को कुछ दिन लगातार करें। आप ये पाएंगे कि अभी आपने नाटक का 'अ' 'आ' 'इ' भी नहीं सिखाया, लेकिन बच्चे पूरे उत्साह और रुचि के साथ अभिनय कर रहे हैं, नाच–गा रहे हैं।

हर बच्चा नैसर्गिक रूप से क्षमतावान होता है। यहां इस बात पर विचार–विभेद कर सकते हैं कि बच्चे जन्मजात कलाकार होते हैं। हम पाते हैं कि कुछ बच्चे इस प्रक्रिया को देखने के बाद भी इस ओर आकृष्ट नहीं होते या उनकी रुचि नहीं होती। हमें यह जान लेना चाहिए कि हर बच्चा क्षमतावान है, प्रतिभाशाली है। बच्चों के संदर्भ में प्रतिभाशाली होने का अर्थ है कि वह ज्ञान की सतत खोज में है किंतु उसकी भी एक नैसर्गिक अभिरुचि है। कोई खेल में, कोई मशीनों, औजारों के साथ खेलने में, कोई गाने में, नाचने में... रुचि ले रहा है, यह रूचि ही उसको प्रतिभाशाली बनाती है। हमें बच्चों की नैसर्गिक वृत्ति को खोजना है न कि सबको एक हथौड़े से ठोकपीट कर अपने मनमाफिक बनाना है। यह प्रक्रिया बहुत धैर्य की मांग करती है। इस प्रक्रिया की जिम्मेदारी सिर्फ कलात्मक गतिविधियां करने वालों की ही नहीं है, हर शिक्षक, हर माता–पिता की भी है।

आइए, रंगमंच की कक्षा में लौटते हैं। लगातार कुछ दिनों के सुधार को देखने के बाद आप पाएंगे कि बच्चों ने बिना किन्हीं संवादों को याद किए, बिना किसी निर्देशक के संवाद बोलने का अभिनय किया। बच्चों में अनुकरण की क्षमता और कौशल बहुत होता है। उसी के बल पर वे आपको भी अचंभे में डाल

देते हैं। अब आप उनके साथ उनकी प्रस्तुतियों पर मित्रतापूर्वक चर्चा कर सकते हैं। क्योंकि अब वे कुछ और बेहतर, कुछ और नया करना चाहते हैं। आपके लगातार प्रोत्साहन से आपने उनका विश्वास भी जीत लिया है तो वे खुले दिल से उनको स्वीकारेंगे। चूंकि बच्चों के साथ किसी भी कला–प्रक्रिया को करते समय कोई भी बंधन, अनुशासन या नियम वर्जित माना जाता है। उनकी सहज विकासशील प्रक्रिया में अब आप उनके शिक्षक या उपदेशक नहीं हैं, उनके मित्र हो गए हैं, तो कुछ बेसिक बुनियादी बातें उन्हें बता सकते हैं। मसलन दर्शकों की तरफ बच्चों के चेहरे या आवाज का हिस्सा हो ताकि आपका अभिनय या संवाद छुपे नहीं। संवादों को सारे दर्शक सुन सकें, वगैरा। किंतु इसमें और ज्यादा कुछ न जोड़ें। नाटक एक दृश्य काव्य है। दर्शक को जो आप दिखाना चाहते हैं और जो सुनाना चाहते हैं वह दर्शकों तक ठीक–ठीक पहुंचे। फिर ये जरूरी नहीं कि किसी खास जगह से ही ये अभिनय हों। बच्चों के साथ नियमित रूप से गाना बजाना करें। जिससे उनमें सुनने की और गाने की प्रवृत्ति विकसित हो। उन्हें ताल का भी ज्ञान हो। फिर धीरे–धीरे आप उनसे ही किसी विषय पर बातचीत करके नाटक लिखवा सकते हैं। लिखवाने की बात इसलिए कर रहा हूं क्योंकि उस नाटक में उनकी कल्पना उनके अनुभव, विचार या स्वयं वे प्रकट होंगे।

आप उनकी मदद हर जगह कर सकते हैं। इस पूरी प्रक्रिया में सबसे बड़ी बात है संवेदनशीलता। हमें बच्चों के प्रति संवेदनशील रहकर, उनकी आंतरिक खूबियों को बाहर लाना है। कोई बच्चा स्वयं को अक्षम पाता है, तो भी आपकी प्रेरणा से उसे हिम्मत और आत्मविश्वास पैदा होना चाहिए। जन्मजात कला न भी हो तो भी क्षमता तो जन्मजात है ही, उसी को हमे प्रेरित करना है।

बच्चों द्वारा तैयार नाटक के पोस्टर, गीत, संगीत, वेशभूषा, रूपसज्जा सब कुछ उनके द्वारा ही सर्जित हों। ऐसी नाट्य प्रस्तुति का आयोजन आप विद्यालय या किसी भी चौपाल, बगीचा या अन्य जगह करें।

रंगमंच सारी कलाओं का समावेश है। वह बच्चों के विकास में अहम् भूमिका निभाता है। उससे बच्चों के व्यक्तित्व में क्या–क्या परिवर्तन आते हैं, मैं उन्हें नहीं बताऊंगा आप (शिक्षक, अभिभावक) उन्हें दर्ज कीजिए। बच्चों के मनोविज्ञान का अवलोकन करते हुए, उन में आए कुछ बेहतर बदलावों को महसूस कीजिए, उन्हें लिखिए और उसे अपने अध्याय के रूप में शामिल कर लीजिए।

हेमंत देवलेकर : नाटककार हैं। उज्जैन (मध्यप्रदेश) में निवास।

कला शिक्षा का महत्त्व

मोहन लाल जाट

रवींद्रनाथ टैगोर के अनुसार ''विद्यार्थी के व्यक्तित्व निर्माण एवं विकास के लिए साहित्य, संगीत और कला महत्त्वपूर्ण साधन है।'' कला वह, जो सत् है, जो सुंदर है, वही कला है। वैज्ञानिक डॉ. सी.वी. रमन ने भी कहा, ''विज्ञान कला का सर्वाधिक रचनात्मक स्वरूप है।'' कला से आत्मदर्शन, आत्मानुभूति, आत्मचिंतन एवं आत्म–निर्णय की क्षमता का विकास होता है। कला से विद्यार्थियों को अभिव्यक्ति का अवसर मिलता है, जिससे उनमें सृजनात्मकता का विकास होता है। उनकी कल्पनाशक्ति, निरीक्षण एवं स्मरण शक्ति का विकास होता है। उनमें कुछ नया करने के प्रति रुचि और अनुराग पैदा होता है, रसानुभूति होती है, जिससे उन्हें आनंद मिलता है। मस्तिष्क, आंख और हाथ के साथ समन्वय स्थापित होता है।

कला बच्चों में दबी हुई इच्छाओं को प्रकट करने में सहायता प्रदान करती है। कला मानवीय मूल्यों का प्रकट करने का भी एक प्रमुख साधन है। कला सत्य, अहिंसा, भ्रातृत्व, संवेदनशीलता और धर्मनिर्पेक्षता के प्रमुख मानवीय मूल्यों को प्रतिष्ठित करती है। वह विभिन्न माध्यमों से रंगों व रेखाओं के द्वारा इन मानवीय मूल्यों को आकर्षक रूप से प्रस्तुत कर सकती है। जटिल विषयगत सामग्री को सरलीकृत रूप से प्रस्तुत करने में वह अपना महत्त्वपूर्ण योगदान करती है। जहां, वह एक और उन्हें सरल करती है, वहीं दूसरी ओर वह बच्चों में सृजनात्मक गुण का विकास भी करती है। शिक्षा से संबंधित कोई भी विषय ऐसा नहीं है, जो कला से संबंध न रखता हो।

कला शिक्षा के अभाव में न केवल हमारी शिक्षा व्यवस्था जड़ हो गई है वरन् हमारी वर्तमान जीवन–यात्रा भी संवेदनाहीन हो गई है। हमारे अतीत के रस–सृष्टाओं द्वारा निर्मित रचनाओं के सौंदर्य निधि से भी हम वंचित हुए जा रहे हैं। हम लोगों की परखने की दृष्टि तैयार नहीं होने के कारण देश में चारों और बिखरी चित्रकला, मूर्तिकला एवं स्थापत्य कला के सौंदर्य को समझाने के लिए बाहर से विदेशियों को बुलाने की आवश्यकता पड़ी है। आधुनिक कलाकृतियों का भी जब तक विदेशी बाजारों में मूल्यांकन नहीं हो जाता, तब तक हमारे यहां उनका आदर नहीं होता, यह हमारे लिए लज्जा की बात है। आज कला और सामान्य जन के बीच बढ़ती दूरियां हमारी विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान को धूमिल कर रही हैं। आज न केवल छात्रों में बल्कि अभिभावकों, शिक्षकों, शिक्षाविदों एवं नीति–निर्माताओं में कला के प्रति जागरूकता बढ़ाने की जरूरत है। अन्यथा यह केवल 'फुरसत के क्षणों का क्रियाकलाप' मात्र रह जाएगा। प्राथमिक कक्षाओं से आगे जाते–जाते बच्चों की कलाओं में रुचि क्रमशः कम होती चली जाती है। जिसका मुख्य कारण कला शिक्षा को प्रमुख विषय नहीं माना जाना है। अधिकांश विद्यालयों में कला शिक्षक नहीं होते हैं। ऐसी स्थिति में कला शिक्षा पढ़ाने का कार्य सामान्य विषय के शिक्षक को सौंप दिया जाता है। तब न तो शिक्षक की पढ़ाने में रुचि होती है और न ही बच्चों की पढ़ने में। ऐसी स्थिति में कला विषय में बच्चों की रुचि खत्म हो जाती है। कला विषय की पुस्तक लेखन का कार्य भी सामान्य

विषय के शिक्षकों से कराया जाता है, जिनको सौंदर्य एवं कला तत्त्व के बारे में कोई जानकारी भी नहीं होती है। ऐसी पुस्तक के ज्ञान से सौंदर्य को परखने की दृष्टि तैयार नहीं हो सकती।

कला शिक्षा की समस्या केवल भारत की नहीं वरन् विश्वव्यापी है, जिसको सन् 2000 में यूनेस्को के महानिदेशक ने एक अपील के रूप में प्रस्तुत किया था। उनके संबोधन के मुख्य अंश इस प्रकार हैं– ''अब एक ऐसी संतुलित शिक्षा की आवश्यकता है, जो बच्चों के बौद्धिक, भावनात्मक और शारीरिक विकास में अपनी अहम भूमिका निभाए। कला शिक्षा इस कार्य को करने में खरी उतरती है। क्योंकि इसके प्रशिक्षण से शरीर के साथ–साथ मस्तिष्क को भी विकसित होने में मदद मिलती है तथा बच्चों की संवेदनशीलता तीक्ष्ण होती है और वे अन्य विषयों के ज्ञान के लिए सक्षम बनते हैं''

यदि हमारी शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास करना है, तो हमारे पाठ्यक्रम में कला का स्थान अन्य पढ़ाई–लिखाई के विषयों के समान होना चाहिए। हमारे देश में शिक्षा के बारे में, अब तक जो व्यवस्था की गई है, वह अपर्याप्त है। इसका एक कारण संभवतः यह है कि हमारे यहां अनेक लोगों की मान्यता है कि कला साधना है और वह मात्र पेशेवर कलाकरों का काम है, साधारण आदमी को उससे कुछ लेना देना नहीं है। बहुत से पढ़े–लिखे लोग तक, कला के संबंध में अपनी अज्ञानता पर संकोच का अनुभव नहीं करते, जनसाधारण की तो बात ही छोड़िए। वे तो फोटो और चित्र का अंतर भी नहीं समझ पाते। वे बच्चों की जापानी गुड़िया को एक श्रेष्ठ कलाकृति मानकर, उसे अवाक् देखते रहते हैं। भद्दे लाल, नीले, बैंगनी रंगवाले रैपरों को देखकर उनके आंखों को किसी प्रकार की पीड़ा नहीं होती है, सच पूछिए तो उन्हें अच्छा ही लगता है। वे अधिक उपयोगिता की दुहाई देते हुए, आसानी से उपलब्ध मिट्टी की कलसी (मटकी) के बदले टिन का कनस्तर इस्तेमाल करते हैं।

प्रारंभिक शिक्षा के वर्षों में बच्चों को विद्यालय में कला और सृजनात्मकता कार्य करने के मौके ही नहीं दिए जाते और न उन्हें प्रकृति और कलात्मक वस्तुओं को निकट से देखने का अवसर दिया जाता है। ऐसी स्थिति के लिए देश का शिक्षित समाज एवं विद्यालय उत्तरदायी हैं। इसका निवारण कैसे किया जाए, पर हम विचार करें। कला शिक्षा की पहली मांग है– प्रकृति और कलात्मक वस्तुओं को श्रद्धा के साथ देखा जाए, उनके निकट रहा जाए। जिन व्यक्तियों का सौंदर्य जागृत है, उनसे चर्चा करके कलाकृति के सौंदर्य की समझ बनाई जाए। विद्यालयों का यह कर्त्तव्य है कि वे अन्य विषयों के साथ–साथ कला विषय को भी पाठ्यक्रम

में रखें, परीक्षा की दृष्टि से कला को अनिवार्य विषय मानें। विद्यार्थी प्रकृति के निकट संपर्क में आ सकें, इसकी व्यवस्था की जाए।

वर्तमान शिक्षा पद्धति, बदलते प्रतिमान एवं तकनीकी शिक्षा ने समाज की परिकल्पना ही बदल डाली है। समाज भी अपनी मूल संस्कृति को लुप्त होते देख रहा है। आने वाला समय ही इसको बदलने के लिए मजबूर करेगा। तकनीकी शिक्षा पर अधिक जोर देने से, समाज की संस्कृति एवं सभ्यता का विनाश हो रहा है। आज कला शिक्षा में नए विषय जोड़ने के बजाए, जो विषय चल रहें, उन्हें बंद कर उनके पदों को भी समाप्त किया जा रहा है। कला एवं सृजनात्मक विषयों से ही समाज को नैतिक, सुसंस्कृत एवं समृद्ध बनाया जा सकता है। कला निजी तथा आंतरिक अनुभव को सार्वजनिक अभिव्यक्ति प्रदान करने का मानवीय उपादान है। यह आंतरिक तथा बाह्य जगत के बीच अधिकतम संवाद तथा निकटता स्थापित करने में सहायता देती है।

हम शैक्षिक पाठ्यक्रमों में कला शिक्षा को अहम् स्थान देकर अनेक समस्याओं का समाधान कर सकते हैं, साथ ही अन्य विषयों की नीरसता को भी कम कर सकते हैं। स्कूल में कला शिक्षा के लिए हम निम्नलिखित प्रयास कर सकते हैं–

- स्कूलों में कला शिक्षकों की नियुक्ति की जाए।
- विद्यालय की लाइब्रेरी, प्रार्थना सभा हॉल, कक्षा–कक्ष में कुछ अच्छे चित्र, मूर्तियां और कलाकृतियां लगाई जाएं।
- विद्यार्थियों को आर्ट गैलेरी में लगी प्रदर्शनी को दिखाना।
- कला शिक्षा स्वतंत्र विषय के रूप में पढ़ाई जाए, जिसके लिए प्रति सप्ताह चार पीरियड निर्धारित हों। विद्यार्थियों के श्रेणी निर्धारण में इसके अंक जोड़े जाएं।
- शिक्षक–शिक्षिका बच्चों को स्कूल में सृजनात्मकता के मौके दें।
- बच्चों के द्वारा निर्मित कला सामग्री की स्कूल में प्रदर्शनी लगाई जाए।
- बच्चों को प्रकृति के नजदीक ले जाया जाए।

मोहन लाल जाट : विद्या भवन एस.टी.सी. कला संस्थान, उदयपुर में कार्यरत हैं।

एक अनूठा स्कूल

प्रमोद मैथिल

आनन्द निकेतन स्कूल ने 2012 में अपनी अकादमिक गतिविधियों की शुरूआत की। एक स्कूल के रूप में, शिक्षा के अधिकार – 2009 के सपने को साकार करने से हमारी यह आकांक्षा है कि जीवन के सभी पहलुओं में बच्चों को निर्भयता, शांतिमय एवं अवसरग्राही वातावरण मिले। अगर आप चाहते हैं कि आपका बच्चा सीखने के दौरान खुश रहे, जो वह खोजना चाहता है और उसे कैसे सीखना है, की क्षमता उसमें हो, तो उसे देखने के लिए आप हमारे पास आ सकते हैं। हम एक ऐसे स्कूल की कल्पना को साकार करना चाहते हैं, जो आम स्कूल की अवधारणा से कुछ बातों में भिन्न हो। यहां पर हम एक ऐसे स्कूल की एक अंतरंग झलकी प्रस्तुत कर रहे हैं।

हमारे स्कूल का दर्शन एक बेहतर समाज के सृजन, जिसमें शांति, बराबरी व लोकतंत्र हो, को देखता है। हम यह महसूस करते हैं कि बच्चों को जीवन की शुरूआत में ही, समाज के मूल्यों के प्रति सत्यवादी नजरिए का अनुभव देने की जरूरत है। हमारा बच्चों पर पूरा भरोसा है। विश्वास करते हैं कि हम उन्हें सार्थक रूप से सीखने के अवसर दें, जहां उनकी खुद की जगह और रास्ता हो और यदि उन्हें काम करने की आजादी दी जाए, तो वे विभिन्न अवधारणाओं को सरलता से सीख सकते हैं। इसलिए हमने यहां परिवेश आधारित मूल्यों और विश्वसनीय व्यवस्था का सृजन करने को चुना है, जो राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 के दस्तावेज में, सुविचारित ढंग से भारतीय संदर्भ में संवैधानिक मूल्यों को ध्यान में रखते हुए विकसित किया गया है। यहां हम बच्चे को अवलोकन करने, खोजने, सवाल करने, अनुभव करने, गलतियां करने और उन्हें ठीक करते हुए, स्वयं ज्ञान का सृजन करने देते हैं। हमारा विश्वास है कि हर बच्चे में जन्मजात सीखने और ज्ञान सृजित करने से लेकर इसे समृद्ध करने की क्षमता और चाहत होती है। एक खास अंतर यह होगा कि बच्चे के पास ढेरों सूचनाएं होने बजाए, उसकी सीखने की क्षमताओं को सहेजने पर पर हमारा फोकस होगा।

मूल संकल्पना

विषय और वर्ग आधारित डिविजन की दिशा में इस स्कूल का अधिक गतिशील नजरिया होगा। स्कूल में हमने विषय युक्त कमरों, भरपूर संसाधनों,

गतिविधियों और शिक्षकों को स्थापित करने की योजना बनाई। जिसमें बच्चों को आयु वर्ग, कौशल और उनकी चाहत के आधार पर समूहों में बांटा जाएगा और जो एक–दूसरे कमरे में आ–जा सकेंगे। आनंद निकेतन आम स्कूल से एक भिन्न नजरिया अख्तियार किए है। आम स्कूल में विभिन्न श्रेणियों (आयु वर्ग) के बच्चे चारदीवारी में ठहरते हैं और शिक्षक कक्षाओं में बहुत कम संसाधनों के साथ आते–जाते हैं। आनन्द निकेतन में बच्चों को प्रोत्साहित करने हेतु बेहिचक और बिना डरे, ईमानदारी के साथ सोचने और अपने मतों को अभिव्यक्त करने की पूरी आजादी और अनुमति होगी। बच्चों की न केवल वे क्या सीखना चाहते हैं, बल्कि कैसे सीखना चाहते हैं, को तय करने में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। हम दृढ़तापूर्वक महसूस करते हैं कि सीखने की दिशा में अपेक्षाकृत अधिक तार्किक नजरिया हो, किन्तु इसके परे हम ईमानदारीपूर्वक यह विश्वास करते हैं कि हर बच्चा विलक्षण है और हम भी बच्चे से बहुत कुछ सीख सकते हैं।

शिक्षण विधि

आनन्द निकेतन की शिक्षण विधि में हमारा फोकस उस नजरिए के इस्तेमाल पर होता है, जिसमें प्राथमिक तौर से स्वतंत्र रूप से सीखने का वातावरण बने। स्कूल में बच्चों के लिए जगह, सामग्री व संसाधनों का इस प्रकार से प्रबन्ध किया जाता है कि वे धीरे–धीरे उनका अर्थ निकालने, उनका सामना करने में संलग्न हों। हर बच्चे की सामग्री सहित मुद्दों पर बातचीत करने में, चर्चा करने में, रूचियों में, निर्णय करने में, गलतियों और सवालों से जूझने में कोई मदद और मार्गदर्शन भी करता है। इस मदद में यह भी शामिल है कि कोई प्रौढ़ मार्गदर्शक केवल तभी मदद करेगा या जवाब देगा, जब बच्चा चाहेगा या मदद करने वाला यह महसूस करेगा कि बच्चे को मार्गदर्शन की जरूरत है। वह बच्चे को नहीं रोकेगा कि उसे कोई सुधार करने के लिए कोई कदम उठाने की जरूरत है। लेकिन यह होते हुए भी, यहां मार्गदर्शक बच्चे को परिणामों के बारे में एक दृष्टि देगा ताकि बच्चा आगे बढ़ने के लिए निर्णय ले सके। इस स्कूल में अनेक मान्यताओं को समझने, जांचने और परखने के लिए विविध प्रकार की गतिविधियां और अभ्यास किये जाते हैं। इन अभ्यासों और गतिविधियों के दौरान हम बच्चों पर पूरा भरोसा करते हैं, बच्चों के काम में मार्गदर्शक कम से कम दखलंदाजी करते हैं। बच्चों के प्रयासों को अत्यधिक महत्त्व देना, उनके द्वारा किए जा रहे कार्य को चुनौतीपूर्ण बनाना शामिल है। बच्चों को गलतियां करने की छूट देना भी इसमें शामिल है। यह प्रक्रिया समूह में होती है, जो बंधे–बंधाए पाठ्यक्रम की मोहताज नहीं होती।

स्कूल में आज क्या करना है, इसका फैसला बच्चे और मार्गदर्शक मिलकर करते हैं। इस प्रक्रिया में पिछले दिनों की एक घटना आपके साथ बांट रहा हूं।

शुरुआत में गाने–बजाने और चबूतरे पर बैठकर

चर्चा करने के बाद हमने दिन की योजना बनाने की शुरुआत की। हमने पहले ही बोर्ड पर आज की सुझाई जाने वाली गतिविधियां लिख रखी थीं। जिसमें हमने अलग–अलग बादलों के रूप में गतिविधियां लिखीं थीं तथा उनमें हमने समय लिख कर खाली जगह छोड़ दी थी ताकि उनका कोई फिक्स क्रम हमारी तरफ से तय है, ऐसा उन्हें न लगे। (चित्र 1)

हमने कहा, चूंकि बच्चों की संख्या कम है, तो हम चाहते हैं कि हर कमरे में एक साथ कम से कम चार बच्चे तो जरूर जाएं। हमने उंगली रख–रखकर, सारा पढ़कर उनको सुनाया फिर बच्चों से पूछा कि अब आप बताएं कि आप क्या और किस क्रम में करना चाहते हैं। हमने इस सवाल को और बरीकी से पूछा कि सबसे पहले आप क्या करना चाहते हैं।

सब बच्चों ने सबसे पहले 'संख्या के खेल' में जाना तय किया। पर दूसरी गतिविधि के चयन में दुविधा आ गई, क्योंकि एक बच्चे को 'भाषा के कमरे' में जाना था और तीन को 'कबाड़ से जुगाड़' में। हमने कहा कि अब या तो आप तीनों उस बच्चे को मना लो या वह बच्चा इन तीनों को मना ले कि हम चारों 'संख्या के खेल' के बाद किस कमरे में जाएं। तीनों बच्चे उस एक बच्चे को समझाने पहुंच गए। हम काफी आनंदित तरीके से दूर से सबको देख रहे थे। पहले तीन में से दो बच्चे जल्दी ही बदल गए और अब स्थिति उल्टी थी। हम दूर थे, इसलिए हमें पूरी बातें तो नहीं सुनाई दीं। खैर, थोड़ी मशक्कत के बाद तीसरा बच्चा भी तैयार हो गया और अब सारे बच्चे 'संख्या के खेल' के बाद 'भाषा' के कमरे में जाने को तैयार हुए।

इसके बाद 'कबाड़ से जुगाड़' और फिर 'मनमर्जी के समय' में कबड्डी खेलना तय किया। 'मेरी जगह' को सजाने के काम को बाद के लिए छोड़ा और यदि समय बचा तो आज कार्टून फिल्म भी देख लेंगे, ऐसा तय किया। (चित्र 2)

प्रमोद मैथिल : एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से जुड़े रहे। बाद में कृष्णमूर्ति फाउंडेशन, सहयाद्री स्कूल में शिक्षण किया। वर्तमान में आनंद निकेतन, भोपाल में बतौर संचालक कार्यरत।

■ डायरी से

प्रयोग का जुगाड़

शहनाज़ डी.के.

पत्रिका में इस स्तंभ को रखने के पीछे हमारा मुख्य प्रयोजन शिक्षक–शिक्षिकाओं के कक्षा शिक्षण के अनुभवों व प्रयोगों को आपस में साझा करना है। आप भी इस स्तंभ में शामिल हो कर, इसे समृद्ध करने में अपना योगदान प्रदान कर सकते हैं।

3 अगस्त 2012

आज धातु और अधातु (विज्ञान–8) जैसे पाठ को कक्षा में शुरू करने से पहले, मैं सोच रही थी क्या कोई प्रयोग बच्चे कर पाएंगे। और कुछ सामग्री क्या बच्चे जुटा पाएंगे, जिससे प्रयोग कर सकें। लेकिन मुझे एक बात का विश्वास था कि बच्चों को अब तक (6–7 महीने) जो थोड़ा–थोड़ा प्रयोग करने की आदत हुई है और वे विज्ञान को पाठ के प्रश्न–उत्तर से थोड़ा बाहर निकल कर समझने लगे हैं, तो कुछ सीखने के लिए वे सामग्री इकट्ठी कर ही लेंगे। इसी सोच से, मैं कक्षा में गई और पाठ के बारे में बातचीत शुरू की, कि धातु क्या होती है और उसको वे कैसे पहचानते हैं?

पाठ थोड़ा ही आगे बढ़ा था कि विद्युत–परिपथ का चित्र आ गया। मैं मन ही मन सोच रही थी कि बच्चों को प्रयोग करने की जरूरत लगे तो कोई बात बने, नहीं तो मेरे जबरदस्ती प्रयोग कराने में मजा नहीं आता। मेरे विचार जैसे बच्चों ने भाप लिए, एक बच्चा बोला, मैडम! क्या ये प्रयोग करके नहीं देखेंगे (करंट वाला)? मैंने कहा, आप सबकी मर्जी होगी तो करेंगे। एक बच्चा खड़ा हो गया और बोला, ऐसा तार (वायर) तो हम ले आएंगे मैडम, दूसरा बच्चा आया और बोला, मेरे घर पर तो छोटा बल्ब भी है मैडम, मैं कल ले आऊंगा। मैं संतुष्ट थी कि बच्चे अब विज्ञान को प्रयोग का विषय समझने लगे हैं। जहां चाह है, वहां राह अपने आप बन जाती है, पर चाह पैदा करने का भी तो मौका मिलना चाहिए।

4 अगस्त 2012

आज बच्चे सुबह से ही सामान लाकर दिखा रहे थे। मेरे कक्षा में पहुंचते ही सभी बोलने लगे, पहले हम प्रयोग करेंगे। मैंने पूछा सामग्री इकट्ठी कर ली, तो सबने कुछ–कुछ चीजें दिखाईं (लकड़ी, रबर, पेन्सिल, कोयला आदि)।

बच्चों ने विद्युत–परिपथ बनाया और तार व बल्ब को जोड़कर बीच में सेल लगाकर बल्ब जलाया, तो बल्ब जल गया, लेकिन सेल पुराना होने के कारण यह धीमा जल रहा था। बच्चों को मजा नहीं आया, अब क्या करें! मैंने कहा कि अलमारी में कुछ पुराने सेल रखे हैं, उन्हें भी इनके साथ जोड़ दो। बच्चे सेल लाकर जोड़ने लगे, तो तीन सेल के लिए उनका तार छोटा पड़ गया। कक्षा का वह लड़का, जो पढ़ने में बिल्कुल रुचि नहीं लेता, दौड़कर बाहर जाने लगा। मैंने पूछा, पवन कहां जा रहे हो तो बोला, बाहर हैंडपंप पर मैंने कल तार का एक

टुकड़ा देखा था, वही लेने जा रहा हूं।

जब वह तार लेकर आया और उसे तीन सेल से लगाया, तो बल्ब तेज जला, बच्चे खुश हो गए और वे आगे प्रयोग के लिए तैयार थे। सभी लकडी, कोयला, कील लेकर देखने लगे कौन–सा विद्युत चालक है और कौन–सा कुचालक। परन्तु एक और परेशानी मुझे हो गई। सभी लड़के तो प्रयोग के लिए दौड़ रहे थे पर लड़कियां कम रुचि ले रही थीं। जब मैंने लड़कियों को पास बुलाकर प्रयोग करने को कहा, तो एक ने कहा, हमारे पास कोई भी चीज नहीं है। मैंने कहा, चॉक ले लो। वह तार को हाथ लगाने से डरने लगी। मैंने पूछा, क्या लड़कों को करंट लग रहा है। उसने हिम्मत करके तार लेकर उसे सेल से जोड़ा। कक्षा की सबसे होशियार लड़की से नहीं रहा गया। वह सब लड़कियों से बोली, ''कई रे छोरियां, गोबर–छाना करोगा कि अणी तार ने भी कदी हाथ लगाओगा'' (गोबर और छानें का काम ही करती रहोगी कि विज्ञान की बातें भी सीखोगी)। फिर उसने सबको बारी–बारी से तार और सेल हाथ में लेकर प्रयोग करवाया और लड़कियों ने कई सारी चीजों को ढूंढ़कर और लाकर प्रयोग करके देखा कि कौन सी चीजें कुचालक हैं और कौन सी सुचालक।

छोटे–छोटे प्रयोग करके बच्चे विज्ञान को अपने दैनिक जीवन का हिस्सा समझने लगते हैं। तभी उन्हें यह समझ में आता है कि यह केवल परीक्षा देने का विषय नहीं है। यह तो हमारी जिंदगी का ही हिस्सा है और मुझे भी बच्चों को जिंदगी के और करीब ले जाने का मौका मिल जाता है।

शहनाज़ डी.के. : राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालय, कानोड़, उदयपुर में कार्यरत हैं।

गुरुजी! हम चलें

गुरुजी!
चलिए हम खेतों में चलकर
मेहनतकशों से दोस्ती करें।
मेहनत से काम करें बच्चों के साथ,
मिलकर काम करें
और
धरती को अपने पसीने सीचें।
जैसे तेज बहाव के साथ
पानी की स्वच्छता बढ़ती है
वैसे ही काम के साथ
सचेतना भी बढ़ती है।
रटते–रटते तो
हम पत्थर बन जाते हैं
काम से बढ़ती है समझ
और समझ से काम।
आज से हमें
नहीं चाहिए रिक्त पाठ
और बिल्कुल नहीं चाहिए
सिर्फ अंक देने वाली पढ़ाई।

– चेराबंडा राजू

प्रकाशक व मुद्रक : रियाज ए. ताहसीन वास्ते विद्या भवन सोसायटी
विद्या भवन सोसायटी, डा. मोहन सिंह मेहता मार्ग, फतेहपुरा, उदयपुर (राज.) से प्रकाशित।
संपादक : भाग चन्द्र कुमावत
मुद्रण : संजय प्रिन्टर्स, 71, महिला मंडल स्कूल के पास, मुखर्जी चौक, उदयपुर–313001

विद्या भवन बुनियादी माध्यमिक विद्यालय में विभिन्न
गतिविधियों में कार्यरत विद्यार्थी